वक्तव्य

प्रिय पाठकगण, कविवर और सुलेखक स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल रायका नाम इस समय हिन्दी-साहित्य-संसारमें सुपरिचित हो गया है। उनकी प्रभावशालिनी लेखनीसे निकले हुए कई उत्तमोत्तम नाटकोंका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो चुका है और वे नाटक हिन्दी-साहित्यके पाठकोंके चित्तपर अपना गहरा प्रभाव डाल चुके हैं। 'पर पारे' नामका नाटक भी उक्त प्रतिभाशाली महाशयका लिखा हुआ है। उसके इस हिन्दी अनुवादके सम्बन्धमें मुझे इतना ही निवेदन करना है कि मूल ग्रन्थमें पात्रोंके जो बंगाली नाम थे वे बदल दिये गये हैं। एक और परिवर्तन किया गया है। मूल ग्रन्थमें बंगालियोंकी प्रथाके अनुसार दादा और पोतीकी बड़ी गहरी दिल्लगी दिखाई गई है। हमारे हिंदी रंग-मंचपर उस दिल्लगीका होना भद्दा जान पड़ता। जैसे दादाका पोतीसे कहना कि "क्या तू मुझे पसंद करती है? मुझे क्यों पसंद करेगी? नई मूछोंके आगे बूढ़ा कहीं पसंद आ सकता है।" या "तू मुझे प्राणेश्वर कहकर पुकार।" या पोती और नत-दमादकी [illegible]न्तकी बातचीत सुनकर कहना कि "तोता खूब पढ़ता है। पढ़ो गंगाराम!" इस तरहकी बातें निकाल दी गई हैं। इस हृदय-द्रावक सामाजिक नाटककी जो आलोचना एक बंगभाषाके मासिक पत्रमें निकली है, उसके कुछ अंशका भाव आगेके पृष्ठोंमें प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है, उसे पढ़कर पाठकोंको इस नाटककी खूबियाँ समझनेमें सुगमता होगी। आलोचनाके अनुवादमें भी पात्रोंके बंगाली नाम बदल दिये गये हैं। अन्यथा पाठकोंको असुविधा होनेकी संभावना थी।

—रूपनारायण पाण्डे

जुलाई, १९१७

समालोचना

'पर पारे' कविवर द्विजेन्द्रलाल रायका लिखा हुआ नया सामाजिक नाटक है। सुप्रसिद्ध 'स्टार थियेटर' में यह खेला भी जा चुका है। सामाजिक नाटक कहनेसे लोगोंके मनमें 'सरला,' 'प्रफुल्ल' और 'बलिदान' का खयाल आप-ही-आप आ जाता है। (ये तीनों बंगलाके अच्छे सामाजिक नाटक हैं।) सर्व साधारणका विश्वास है कि जहाँ यौवन-विवाह अप्रचलित है, स्त्रियोंकी स्वाधीनताका अभाव है, उस समाज और देशमें मातृ-विरोध, कन्या-विवाहकी कठिनाइयाँ और वेश्यासक्ति आदि घटनाओंके सिवा सामाजिक नाटककी सामग्री और क्या हो सकती है? किन्तु 'पर पारे' उस श्रेणीका नाटक नहीं है। यह कविकी प्रतिभाकी बिलकुल ही नई सृष्टि है। शिल्प-चातुर्य, सूक्ष्म चरित्र-विश्लेषण और परस्परविरुद्ध प्रवृत्तियोंके घात-प्रतिघातसे इस उत्कृष्ट नाट्य-काव्यकी रचना हुई है। जो नाटककार मनुष्य-प्रवृत्तिके प्रबल घात-प्रतिघातोंको परिस्फुट रूपसे दिखा सकता है वही कृती कहा जा सकता है। इस नाटकमें एक ओर जैसे स्नेह, कृतज्ञता, क्षमा और त्यागके भाव हैं; वैसे ही दूसरी ओर कृतघ्नता, अत्याचार, कपट, निठुराई और हत्या आदिके भाव हैं। मालूम नहीं, इससे पहले बंगदेशके रंगमंचपर स्वर्गके साथ नरकका ऐसा घोर संग्राम कभी दिखाया गया है या नहीं। यह दृश्य शब्दोंके द्वारा समझानेका नहीं है, यह देखनेकी, समझनेकी, आँखें मूँदकर हृदयकी हरएक तहमें अनुभव करनेकी चीज है।

संक्षेपमें नाटकका कथाभाग यह है। भोलानाथ एक उच्चशिक्षित, परोपकारपरायण, स्नेहशील, उदार, धनी, जमींदार है। वह दीन-दरिद्रोंके मुखपर हँसीकी रेखा देखनेके लिए सर्वदा उत्सुक रहता है; दूसरोंका दुःख दूर करनेमें अपना सर्वस्व भी लगा देनेके लिए तैयार रहता है पोती सरस्वतीके सिवा और कोई नहीं [illegible] सीसे उस सफे [illegible] अपने हृदयके अथाह स्नेहकी पात्री [illegible] पोतीको कि [illegible] जीवनके सन्ध्या-कालको सुखसे [illegible] का विचार करके

बहुत ढूँढ़-खोजके बाद भगवानदासके साथ उसका ब्याह कर दिया। विवाहित जीवनकी प्रथम अवस्थामें युवक-युवतीके प्रणय-चित्रको देखकर पोतीको ही अपना सर्वस्व और प्राण समझनेवाले भोलानाथके हृदयमें आनन्दका उच्छ्वास किस तरह उठता है, नाचता है, लहराता है और हृदयमें नहीं समाता है, सो देखनेकी चीज है, वर्णनकी नहीं। प्रणयकी प्रथमावस्थाके उस मधुर उज्ज्वल चित्रांकनके ऊपर कोई रंग चढ़ाकर उसे और भी उज्ज्वल बनानेकी अगर चेष्टा की जाती, तो शायद उस चित्रकी मनोहरता ऐसी न रह जाती। इसके उपरान्त एक ओर वसन्त ऋतुके गंगाजलके समान साध्वी हिन्दू-ललनाका पवित्र प्रेम दिखाया गया है, जिसमें प्रबलता है, पर गँदलापन नहीं है; जिसके लिए हिन्दू रमणी हँसते हँसते संसारके सब तरहके अत्याचार, अविचार और उत्पीडनोंको सह लेती है लेकिन कर्त्तव्यको नहीं छोड़ती; वैसे ही दूसरी ओर भादोंकी 'भरी हुई नदीके जलकी तरह भगवानदासकी पंकिल, कलुषित, उद्दाम उच्छ्वासमय रूप-लालसा है, जो संयमके बन्धनको नहीं मानती, कर्तव्यके प्रभुत्वको स्वीकार नहीं करती। विशुद्ध प्रेम मनुष्यको देवता बना देता है; लेकिन लालसा उसे पशुसे भी अधम बना देती है।

इसीसे मातृगतप्राण भगवानदास सुन्दरी सरस्वतीको ब्याह कर लानेके बाद उसे घरके काम-काज करनेमें लगानेके कारण मातासे लड़ा-झगड़ा, और इस प्रकार निर्मम तिरस्कार करनेके बाद माताको छोड़कर चला गया। बहुत दिन बीत गये, उसकी बीमार मा जिस समय उसके आनेकी आशासे द्वारपर बैठी हुई आधी राततक प्रतीक्षा करती थी, उस समय भी वह माताको देखने नहीं आया। सरस्वती जब उसकी माकी बीमारीका हाल सुनकर उसे माताके पास जानेके लिए वारंवार कहती है—तिरस्कार करती है—तब वह सुन्दरी रमणीके चरणोंके पास बैठकर काम-सेवा करता है। पहले सरस्वतीसे माताकी बीमारीका हाल छिपाना, फिर टालटूल करना, फिर कर्तव्यपरायण सरस्वतीके उपदेशका प्रतिवाद करना—यह कर्तव्य-ज्ञान-हीन रूपजनित मोहकी चरम दुर्दशा है। इससे भगवानदासके भीषण भविष्यका आभास पाकर सरस्वती काँप उठती है। एक साथ मनुष्य-चरित्रका ऐसा सूक्ष्म विश्लेषण, पाप और पुण्यका घात-प्रतिघात और क्रम-विकास, बंग ।के साहित्यमें कमसे कम तो कहीं नहीं देखा।

उस पार

कुआँ खोदनेवाला जैसे धीरे धीरे नीचे ही उतरता जाता है, वैसे ही भगवानदास भी अपने किये हुए पापके भारी भारसे अवनतिकी फिसलनेवाली सोपान-परम्पराके द्वारा बहुत शीघ्र नीचेकी तहमें पहुँच जाता है। वह उछाले गये पत्थरके टुकड़ेकी तरह—अपनी कक्षासे भ्रष्ट हुए ग्रहकी तरह—आकाशसे गिरते हुए नक्षत्रकी तरह—कैसे बाधाहीन, विश्रामहीन ढंगसे तेजीके साथ नीचे गिरता है, यह बात बड़ी ही स्पष्टताके साथ दिखाई गई है। भगवानदासके कल्याणकी कामना करते करते उसकी माताकी अन्तिम श्वास—प्राणवायु आकाशमें जाकर लीन हो गई। इतनेपर भी भगवानदासको होश नहीं हुआ। इसके उपरान्त, ऐसी अवस्थामें जो होता है वही हुआ। सरस्वतीके रूपके कुम्हलानेके पहले ही भगवानदास मुन्नी नामकी वेश्याके रूपपर रीझ गया। मदिरा और वेश्याके संगमें उसके ददिया-ससुरका दिया हुआ धन उड़ने लगा। इधर बिना चिकित्साके उसका शिशु-पुत्र मर गया। उपेक्षिता और शोकसे व्याकुल साध्वी स्त्री डालसे गिरे हुए पददलित कमल-कुसुमकी तरह मिट्टीमें पड़कर सूखने लगी। सफाई न होनेसे लक्ष्मीका बहुयत्नरक्षित घर भी कूड़ेसे भर गया; क्योंकि उसे देखनेवाला और सफा करनेवाला कोई नहीं रहा। अन्तको ऐसी अवस्था हुई कि उसे देखकर जान पड़ता था, मानों वहाँ मूर्तिमान् अभाव उल्लासके साथ नृत्य करता हुआ फिर रहा है और एक विराट् हाहाकार मूर्च्छित होकर पड़ा हुआ है।

आधे पेट खाकर, मैले कपड़े पहिनकर, जमीनपर पड़े पड़े रोती हुई सरस्वती धीरे धीरे जीवनके दिन बिता रही थी। अंगोंमें आभूषण नहीं थे, बालोंमें तेल न था, देहमें लावण्य न था, मुँहमें हँसी न थी। थी केवल दीप्तिहीन उदास नेत्रोंमें अविराम आँसुओंकी झड़ी। भोलानाथने पोतीके खर्चके लिए जो पाँचसौ रुपएका महीना नियत कर दिया था, वह यथासमय पहुँच जाता था। परन्तु वे रुपए नत-दमाद भगवानदासके हाथों वेश्याके श्रीचरणोंमें पहुँच जाते थे। सती हिन्दू-ललना सरस्वती कर्त्तव्यका खयाल करके, भाग्यका दोष मानकर, चुपचाप मुखपर जरा भी मलिनता लाये बिना सब सह रही थी। यह रामकहानी उसने कभी किसी तरह अपने वृद्ध दादा तक नहीं पहुँचने दी। इस भयसे कि कहीं दादा उसके दुःखपूर्ण हाल जानकर दुःखित होकर उसे उसके पतिके घरसे ले न जायँ; भगवानदासका महीना बन्द न कर दें। लेकिन भोलानाथके

बाल्यबन्धु दीनानाथसे यह नहीं सहा गया। उन्होंने एक दिन जाकर भोला-नाथसे सब हाल कह दिया। सरलहृदय भोलानाथ दीनानाथसे यह समाचार सुनकर सन्नाटेमें आ गये। वे किसी तरह यह विश्वास नहीं कर सके कि सरस्वतीकी ऐसी दुर्दशा हो सकती है। वे कहते हैं–" यह क्या! भगवानदास सरस्वतीको छोड़कर एक वेश्यापर आसक्त हो गया है! वह तो सरस्वतीको बहुत प्यार करता था! सरस्वतीको प्यार किये विना क्या कोई रह सकता है?–"इसके बाद एक असीम विषाद आकर उनके हृदयपर अधिकार कर लेता है। बीते हुए सुखकी याद आती है। एक साल विजयादशमीके दिन शरद ऋतुकी शान्त सन्ध्यामें उन्होंने आड़में रहकर बागके बीच नवदम्पतिकी प्रेमलीला देखी थी। उसके वर्णनमें उनके चित्तका वह स्नेहपूर्ण भाव कैसे मधुर मर्मस्पर्शी ढंगसे प्रकट हुआ है! एक साथ विभिन्न मनोवृत्तियोंका कैसा विशुद्ध मनोहर चित्र खींचा गया है!

इसके बाद भोलानाथसे अपनी पोतीके उद्धारका संकल्प करके अपने चिरसंगी भवानीप्रसाद और बाल्यबंधु दीनानाथको लेकर घरसे निकलते हैं और सहसा भगवानदासकी वेश्याका पता लगानेके लिए चल पड़ते है। उनकी इच्छा हुई कि एक बार अपनी आँखोंसे भगवानदासकी वेश्याको देखें और अगर वह सरस्वतीसे अधिक सुन्दरी होगी, तो वे उसे अपने " ठाकुरद्वारेके आलेमें रख देंगे। " यह कविका चरम कवित्व है। और भी कोई स्त्री उनकी पोतीसे बढ़कर सुन्दरी है, या सुन्दरी हो सकती है–यह बात उनकी धारणासे परे है। इसीसे शिक्षित, धार्मिक, कर्तव्यपरायण, सौन्दर्यके उपासक भोलानाथने यह भाव प्रकट किया कि वह यदि सरस्वतीसे बढ़कर सुन्दरी होगी, तो हम सब सृष्टिसे बढ़कर सृष्टि-सौन्दर्यके सारसौन्दर्य उस रमणीके रूपको दूरसे भक्तिपूर्वक सिर झुकाकर विस्मयपूर्ण दृष्टिसे देखकर अपने मन और नयनोंको चरितार्थ करेंगे––पवित्र करेंगे। किन्तु वह रूप-लालसाके स्पर्शसे मलिन न हो जाय, उसकी पवित्रता न जाती रहे, इसी लिए वे पवित्र ठाकुरद्वारेका अत्यन्त पवित्रस्थान उसके लिए निर्दिष्ट करते हैं। रमणीके रूपको इस तरह भक्तिकी दृष्टिसे देखना द्विजेन्द्र-लाल ऐसे प्रतिभाशाली श्रेष्ठ लेखकका ही काम है। शायद बहुतसे लोगोंको भोलानाथकी यह उक्ति पागलपन या शोकातुर विकृत-मस्तिष्क वृद्धका असम्बद्ध प्रलाप जान पड़ेगी; किन्तु वास्तवमें यह बात नहीं है। यह स्वधर्मनिष्ठ विमलचरित्र भोलानाथके मनोभावका केवल एक प्रतिबिंब है।

भोलानाथने उस वेश्याको देखा, उसका स्वर सुना। देखकर उन्होंने जान लिया कि वह बेशक सुन्दरी है। मगर उनकी "सरस्वतीसे बढ़कर नहीं।" इस "सरस्वतीसे बढ़कर नहीं" में उनकी कितनी स्नेहकी दुर्बलता है और कितना अन्ध-पक्षपात है—सो कौन कह सकता है।

अन्तको भोलानाथ मुन्नी वेश्याको पाँचसौ रुपयेका महीना देकर दूसरी जगह टाल देनेका प्रबन्ध करके चले गये। इधर भगवानदास भवानीप्रसादके मुखसे मुन्नीके भागने और छिन जानेकी बात सुनकर क्रोधसे काँपता हुआ अपने घर लौटकर गया। उस समय सरस्वती पृथ्वीपर पड़ी हुई, आकाशकी ओर ताकती हुई, मन-ही-मन बीती बातोंकी आलोचना कर रही थी। वह एक एक करके बचपनकी स्मृतिके मधुर चित्रोंको, अमावसकी रातके अन्धकारके पर्देपर, बायस्कोपके चित्रोंकी तरह, अस्पष्टभावसे आते-जाते देख रही थी। बारंबार गहरी लंबी साँस छोड़नेसे जान पड़ता था, जैसे उसका हृदय टुकड़े टुकड़े हुआ जा रहा है। समालोचनामें उस मधुर मर्मभेदी दृश्यके वर्णन करनेका प्रयास विडम्बना मात्र है। उस दृश्यको देखकर हृदय आप-ही-आप आँसुओंकी धारासे गल जाता है। इसीसे मुन्नी जब सरस्वतीके घर आई, तब सरस्वतीकी दशा देखकर उसके सिरपर मानों गाज गिर पड़ी। वह चौंककर विस्मयसे कह उठी—"यही सती है?—मुखपर कैसी ज्योति है, मस्तकपर कैसी महिमा झलक रही है—जैसे पर्वतकी जड़में प्रभामंडित, शान्त, स्वच्छ, सुन्दर झील हो! यह भूमि-शय्या जैसे सुवर्णका सिंहासन है, सिरपर आँचल हीरेके मुकुटके समान झलक रहा है! यही सती है! शैतानकी बच्ची, घुटने टेककर इस देवीके आगे हाथ जोड़। देवी, मेरी पूजा ग्रहण करो।" जैसे पारसपत्थर स्पर्श मात्रसे लोहेको सोना बना देता है, वैसे ही साध्वी स्त्रीके सतीत्वके प्रभावसे दमभरमें वेश्या मुन्नीके भी हृदयका भाव बदल गया। मुन्नी जाने भी न पाई थी कि भगवानदास खूब शराब पिये लड़खड़ाता हुआ घरमें आया, और रुपयोंके लिए सरस्वतीके ऊपर घोर अत्याचार करने लगा। मुन्नी एकाएक लौट आई और उसने भगवानदासको वैसा करनेसे रोका। भगवानदासके हाथमें पिस्तौल थी। भगवानदासकी गोली लगनेसे मुन्नी घायल होकर गिर पड़ी। "यह क्या! मैंने खून कर डाला!" इस प्रकार सोचकर भगवानदास भाग गया।

अब पुत्रशोकसे पीड़ित, पतिके द्वारा त्यागी गई सरस्वती हत्याके अपराधमें भागे हुए आसामीकी स्त्री है। किसीने स्वप्नमें भी नहीं सोचा था कि अन्तमें उसकी यह दशा होगी। वह फिर अपने दादाके घर आ गई है। किन्तु इस समय मानों ये पाठकोंके पूर्वपरिचित सरस्वती और भोलानाथ नहीं हैं। मानों दो ऊपरसे बंद और भीतर-ही-भीतर जलते हुए ज्वालामुखी पहाड़ हैं। बाहर हरी घासके समान हँसी देख पड़ती है; लेकिन भीतर दिनरात दारुण ज्वाला प्रज्वलित है। सदा खटका लगा हुआ है कि न जाने किस घड़ी किस छिद्रसे वह भीतरकी आग प्रबल वेगसे बाहर निकल पड़े। इसीसे छिद्रके मुखको बंद करनेकी चेष्टामें लगातार दोनोंके हृदय टुकड़े टुकड़े हो रहे हैं। यह दृश्य कैसा करुण और मर्मस्पर्शी है! ऐसे गहरे दुःखमें ऐसी समवेदनाकी हँसी केवल 'किंग लियर' में ही देखनेको मिलती है। उसके बाद भागा हुआ हत्याका अपराधी भगवानदास दादाजीके यहाँ आश्रय माँगने आता है। बागमें सरस्वती अकेली थी। भगवानदासको देखकर वह पहले तो सन्नाटेमें आ जाती है, लेकिन कुछ देर सोचकर उत्तर देती है कि "ना—तुम चाहे जैसे हो, मेरे स्वामी हो! मैं अपने कर्त्तव्यका पालन करूँगी।" इस प्रकारके आदर्श स्त्री-चरित्र साहित्यमें बहुत ही कम हैं। भोलानाथने आते ही भगवानदासको देखकर शीघ्र ही वहाँसे चले जानेके लिए कहा। सरस्वतीने हाथ जोड़कर घुटने टेककर दादासे स्वामीके लिए क्षमाकी प्रार्थना की। मगर भोलानाथ कोमल-हृदय, सन्तान-वत्सल और स्नेहशील होनेपर भी कर्त्तव्य-परायण थे। उन्होंने स्नेहके चरणोंमें कर्त्तव्यकी बलि देना अस्वीकार करके कहा—"सब समझता हूँ, लेकिन यहाँ लुक्का चोरीसे कुछ न होगा। जिन्दगी भर सीधी राहसे चला आया हूँ; इस समय स्नेहके लिए टेढ़ी राह नहीं चलूँगा।" यहाँ स्नेहके साथ कर्त्तव्यका जैसा भीषण संग्राम हुआ है, वैसा संग्राम मेरी समझमें कभी दो लड़नेवाली वीर जातियोंमें भी नहीं हुआ होगा। ठीक वैसा ही जैसे द्वापरके अन्तमें द्वैपायन ह्रदके किनारे भीमसेन और दुर्योधनका भीषण गदा-युद्ध हुआ था। घात–प्रतिघातसे आगकी चिनगारियाँ निकल रही हैं। बार बार प्रचण्ड आघातसे चोट खाये हुए शोकजीर्ण दोनों हृदयोंमें गहरे दाग पड़े जाते हैं; तब भी कोई अपने कर्त्तव्यके मार्गसे विचलित नहीं होता। प्रार्थना अनुनय–विनय सबको एक एक करके भोलानाथके कर्त्तव्य-ज्ञानकी प्रबल बढ़ियाके आगे तृणके

समान बह जाते देखकर सरस्वतीने कहा—" तो फिर मुझे भी जानेकी आज्ञा दीजिए दादाजी !—वे चाहे जैसे हों, मेरे स्वामी हैं। " उस समय सरस्वतीने सोचा था कि अबकी उसके स्नेहदुर्बल दादाको अवश्य ही हार माननी पड़ेगी। किन्तु जो भोलानाथ जिन्दगी भर कर्त्तव्यके खयालसे ही अपने कर्त्तव्यका पालन करते आये हैं, उनके कर्त्तव्य-पालनके मार्गमें वह अगाध असीम स्नेह भी बाधा न डाल सका। कर्त्तव्यकी आगमें स्नेह भाप बनकर उड़ गया। छाती फुलाकर, गर्दन ऊँची करके दृढ़ स्वरसे भोलानाथने कहा—" ओः—समझ गया, अच्छी बात है। तूने सोचा है बेटी कि तुझे मैं प्राणोंसे भी बढ़कर चाहता हूँ, इस लिए तेरे कारण अपने कर्त्तव्यकी राह छोड़ दूँगा, यह कभी न समझना। कर्त्तव्यके लिए मैंने बहुत कुछ दिया है, तुझ तकको छोड़ दूँगा। उसमें शायद हृदयके टुकड़े हो जायँगे—शायद पागल भी हो जाऊँगा,—लेकिन चाहे जो हो, मैं अपना कर्त्तव्य किये जाऊँगा। तो फिर जा बेटी, मैं तुझको भी विदा करता हूँ—अगर तुझसे जाया जाय सरस्वती, तो जा ! जा,—अन्धा तो हो ही जाऊँगा—आँखो ! अगर आँसू गिराओगी तो तुम्हें निकालकर फेंक दूँगा।"

उस समय सरस्वतीकी अवस्था 'न ययौ न तस्थौ' वाली थी। उस भावका वर्णन लेखनीके द्वारा किया ही नहीं जा सकता। कर्त्तव्य सरस्वतीके हृदयसे भगवानदासके साथ जानेके लिए कह रहा है, लेकिन दादाके प्रति प्यार उसके दोनों पैरोंको मानों जंजीरसे जकड़े हुए है। पैरोंमें हिलने-डुलने-उठनेकी भी शक्ति नहीं है। इस दृश्यको देखकर आँसू नहीं रोके जा सकते। रोकनेसे आँसू फुहारेकी तरह और भी प्रबल वेगसे सैकड़ों धाराओंसे आप ही बह चलते हैं।

और बातें कहनेके पहले सरस्वती और भोलानाथके उस समयके हास्य-विनोदके सम्बन्धमें कुछ कहना जरूरी जान पड़ता है। दूसरे अंकके चौथे दृश्यमें ब्याहके बाद पोतीके साथ दादाका जो हँसी-विनोद लिखा गया है, उसे पढ़नेसे हँसी आप-ही-आप आ जाती है। लेकिन इस विनोदमें वह हँसी नहीं आती, अनुकम्पाका भी भाव हृदयमें नहीं उठता। हृदय मानों मस्तिष्क-संचालनको बंद करके किसी गूढ़ रहस्यमय तथ्यके आविष्कारकी प्रत्याशामें अवाक् होकर निर्निमेष दृष्टिसे ताकने लगता है। जान पड़ता है, कवि मानों अतिमानव और मानवजगतके बहिर्भूत पहलूसे मनुष्य-जीवनकी पर्यालोचना कर रहा है। शायद

इसी धारणाके कारण इस चित्रके स्वाभाविक सूक्ष्म परिस्फुटनके भीतर जो असाधारण शिल्प-निपुणता प्रकट है—मानव-चरित्रकी जो स्वभावज अस्वाभाविकता दिखाई गई है—वह सबको नहीं देख पड़ सकती। इसी कारण, उस समयके हास्य-विनोदके मर्मार्थ और उद्देश्यको समझनेके लिए पार्थिव दृष्टिसे उसके भावार्थको ग्रहण करना होगा, आलोचना करनी होगी और हृदयमें अनुभव करना होगा। वे हास्य-विनोदकी बातें मानों दुःख और अनुकम्पासे पीड़ित मर्मस्थलको भेदकर खूनके तरारे छुटा रही हैं। मानों पवित्र संत्रस्त चरण-विन्याससे, सदा जाग्रत दुश्चिन्ताको दम भरके लिए अन्यमनस्क करके, गहरी मनोवेदनाके एक अंशको हर लेनेके लिए दोनों लगातार चेष्टा कर रहे हैं। हँसी जैसे ओठोंके किनारेपर विषादका वह करुण चित्र देखकर समवेदनाके मारे मलिनमुख होकर चुपचाप खड़ी है। घोर घन-घटा घिरनेपर और आँधी चलनेपर अमावसकी अँधेरी रातको बिजलीकी चमकमें जैसे सावन-भादोंके आकाशकी भयानक अवस्था और भी भयानक देख पड़ती है, वैसे ही मलिन हँसीसे उद्भासित होकर सरस्वती और भोलानाथके मनकी उस समयकी अवस्था भी स्पष्ट देख पड़ती है। यहाँकी दिल्लगी बिजलीका व्यंगहास्य है—मथे जाते हुए समुद्रके फेनकी राशि है।

किन्तु उस दिल्लगीके असामञ्जस्यको: उस मन्थनको, उस विपरीत संघर्षणको प्रकृति और नहीं सह सकी। दोनों रो उठे। भोलानाथने कहा—"और कहाँ तक दबावेगी बेटी, और मैं ही कहाँतक दबाऊँगा! यह शोक गैरिक स्रोतकी तरह पत्थर फोड़कर बाहर निकल रहा है।" यह स्वभावका हृदयस्पर्शी विशुद्ध चित्र है।

भागा हुआ भगवानदास पकड़ा जाकर विचारालयमें उपस्थित किया गया। किन्तु ऐसे दारुण भाग्य-विपर्ययके—ऐसे अचिन्त्य विपत्तिपातके—समय भी भगवानदासकी निन्दित नीच प्रकृतिमें कुछ परिवर्त्तन नहीं हुआ। अपने घृणित जीवनपर मृत्युशय्यापर पड़े हुए कृपणकी धन-लालसासे भी अधिक ममता-मोह उसे होता है। इसीसे वह न्यायाधीशके आगे बिना किसी संकोचके कह उठता है कि "मैंने खून नहीं किया; मेरी स्त्रीने मुन्नीकी हत्या की है।" उसका बदला लेनेके लिए ही मानों ठीक उसी घड़ी सती साध्वी सरस्वती अपने नालायक पतिके प्राण बचानेके लिए दर्शकमण्डलीके भीतरसे दौड़ आकर

कहती है—" धर्मावतार, यह सच बात है। यह हत्या मैंने ही की है। " इतना कहकर साध्वी सरस्वती हथकड़ी पहिननेके लिए दर्पके साथ हाथ बढ़ा देती है।

वृद्धावस्थाके शेष बन्धन, जीवनके एकमात्र अवलम्बन सरस्वतीने कर्त्तव्यके मार्गमें आत्मबलि दे दी—यह सुनकर भोलानाथ एकदम पागल सरीखे हो गये। सरस्वतीको बचानेके लिए इस समय बहुत से धनकी जरूरत है। मगर उतना धन आज भोलानाथके पास नहीं है। जिनका उन्होंने उपकार किया था; उनके द्वारपर भिक्षुककी तरह बारबार जाकर भी वे धन नहीं पाते; मनुष्य-जातिकी अकृतज्ञता देखकर मर्म-व्यथा ही पाते हैं। दीनानाथ अन्तको उतने धनका प्रबन्ध अवश्य कर लाया; किन्तु मुकद्दमेमें भोलानाथ कुछ कर नहीं सके। आसामीके इकबालपर सरस्वतीको फाँसीका हुक्म हो गया। भोलानाथको आँखोंके आगे अन्धकार देख पड़ा। जान पड़ा, धरती पैरोंके नीचेसे निकली जाती है। इसी अवस्थामें वे अचेत हो गये।

बहुत तड़केका समय है। पक्षी इस समय भी अपने घोंसलोंमें जगे नहीं हैं। अरुणकी आभा, जो सूर्यदेवकी सुनहली किरणोंसे पहले प्रकट होती है, आकाशमें बादलों पर छिटक रही है।—जेलके एक किनारेपर सोनेकी पुतली सरस्वती हत्याके अपराधमें इस जगतसे सदाके लिए विदा होनेको तैयार बैठी है। अभी फाँसी लगनेका समय नहीं हुआ; जेलर साहब और पहरेदार सिपाही सरस्वतीको लिये हुए मॅजिस्ट्रेट और डाक्टरसाहबके आनेकी राह देख रहे हैं।—इसी समय भगवानदास वहाँ आकर उपस्थित होता है। जेलर सरस्वतीके कहनेसे उसके हाथ बंधमुक्त कर देता है और सरस्वती भगवानदासके पैर छूकर प्रणाम करती है। अब भगवानदासके चरित्रमें कुछ परिवर्तन हो चला था। इसीसे उसने पूछा—" सरस्वती, मुझ ऐसे अभागेके प्राण बचानेके लिए मिथ्या हत्याका अपराध तुमने अपने सिर क्यों ले लिया? " सरस्वतीने कहा—" फाँसी तो मुझे अपने गलेमें लगानी ही पड़ती; मगर इस फाँसीके समान सुख उसमें न होता। " इसके बाद सरस्वती अन्तिम उपदेश करती है—" मेरा विश्वास है कि परकाल अवश्य है। इतना बड़ा आयोजन, यह बुद्धि, यह विवेक, यह अनुभूति क्या इसी जगह इतने ही थोड़े समयमें समाप्त हो सकती है? यह आकांक्षा फिर निश्चय ही अस्थि-मज्जामें—रक्त और मांसके

आवरणमें—आवेगी। इस महती सृष्टिकी अपूर्व शृंखला क्या उन्मादका प्रलाप है? मैं मरनेसे बिलकुल नहीं डरती। अच्छा तो मैं तैयार हूँ।" कैसा गहरा विश्वास है! कैसा प्रबल कर्तव्य-ज्ञान है! देव-मन्दिर भी इस हृदयसे अधिक पवित्र नहीं होगा!

भगवानदास चला गया। प्रेमशंकर और दीनानाथको साथ लेकर भोलानाथ सरस्वतीके पास पहुँचे। सरस्वती और भोलानाथके परस्पर एक दूसरेसे अंतिम विदा माँगनेका यह दृश्य बड़ा ही हृदयद्रावक है। इसका वर्णन यहाँपर मैं नहीं करूँगा। पाठक इस दृश्यको स्वयं पढ़ें और अनुकम्पा या सहानुभूतिके आँसू बहावें—वे कृतार्थ और पवित्र हो जावेंगे।

दीनानाथ और प्रेमशंकर भोलानाथको वहाँसे घसीट ले गये। अब फाँसीमें कुछ देर नहीं। जल्लाद सरस्वतीके गलेमें फाँसीका फन्दा डालकर तख्तेसे नीचे उतर आया। पक्षीगण गाते गाते एकाएक चुप हो गये; सूर्यदेवने बादलोंकी आड़में मुँह ढँक लिया। प्रातःकालका वायु काँपकर खड़ा हो गया। वृक्ष-लतायें चुपचाप आँसू बहाने लगीं। उसी समय एकाएक उस आसन्न मृत्युके भयानक सन्नाटेको तोड़कर "खबरदार! निरपराधिनीको फाँसी न देना मुन्नी जीती है" कहकर चिल्लाती हुई मुन्नी वहाँपर उपस्थित हो गई। मजिस्ट्रेटने पूछा—"तुम कौन हो?" मुन्नीने उत्तर दिया—"मैं वही मुन्नी हूँ।" सरस्वती छूट गई। एक गहरी लंबी साँस छोड़कर पवनदेव डोलने लगे। सब पक्षी उल्लासके मारे खूब कलरव करते करते घोंसलोंसे निकलकर उषःकालकी सुनहली किरणोंमें पलटे खाते-खाते विचरने लगे। दर्शकोंकी छातीपरसे यन्त्रणाकी शिलाका दारुण बोझ जैसे अकस्मात् किसी जादूके जोरसे रुईकी तरह हलका होकर गहरी साँसमें उड़ गया। इस प्रकाश और छायाके विलक्षण विचित्र समावेशसे जो अपूर्व करुणदृश्य अंकित हुआ है, वह शब्दोंके द्वारा नहीं समझाया जा सकता। वर्णन करनेमें शब्द चुक जाते हैं; लेकिन वर्णनीय विषयका परिचय पूरा नहीं होता।

भोलानाथको सरस्वतीके छुटकारेकी खबर नहीं मिली। वे जेलखानेसे बाहर निकलकर दीनानाथको साथ ले एकदम काशीको रवाना हो गये। लेकिन शांतिमय शंकरकी पुरीमें पहुँचकर भी उन्हें शांति नहीं मिली। उन्होंने एक दाना भी नहीं खोंटा—हर घड़ी अगाध, असीम, तीव्र यन्त्रणा देनेवाली दारुण

चिन्ता उन्हें सताने लगी। एक एक करके संसारके सभी लोगोंने उ
दिया है। केवल मनुष्योंकी कृतघ्नताकी चिन्ता और सरस्वतीकी
जवानीके प्रेमीकी तरह, उनका साथ नहीं छोड़ती। वे सोर सं
सरस्वतीको देखते हैं, हवाकी खटकेमें सरस्वतीकी आवाज सुनते
शब्दमें सरस्वतीके पैरोंकी आहटका अनुभव करते हैं और दूर
गहरी निराशाकी दारुण यन्त्रणामें तड़फने लगते हैं। जीवन-धा
हो गया है। क्या करें, कुछ समझमें नहीं आता। एक तरफ सरस्व
है, दूसरी तरफ निष्ठावान् हिन्दूका धर्मबुद्धिजनित और बचपन
संस्कार है। इन दोनोंने मिलकर उस शोकजीर्ण हृदयके भीतर घोर
मचा रक्खा है। विपन्न विवेकने आई हुई विपत्तिसे मोहित होक
ढीले कर दिये हैं। कर्तव्य-ज्ञान कर्तव्यका निश्चय नहीं कर सकत
बड़ी है, या बचपनसे पाला गया धर्म-विश्वास बड़ा है—इस गुरुतर
मीमांसा नहीं होती। सरस्वतीके वियोगकी ज्वाला असह्य है, इस
रात बीतनेपर एक तेज धारकी कटार हाथमें लिये हुए वे सोने
टहलते टहलते कहते हैं—"ना, मैं यहींपर अन्त कर दूँगा। अब
जाता। लेकिन—यह आत्महत्या—महापाप है। महापाप अगर
नहीं तो मनुष्यमें दानवकी शक्ति क्यों नहीं है? अगर वह शक्ति
मैं सह कहता,—और पाप ही इसे कैसे मान लें—मरना महापाप
यों भी तो तिलतिल करके जल मर रहा हूँ। मैंने यह जीवन
पाई हुई चीजको मैं रक्खूँ या फेंक दूँ, उससे किसीकी क्या हानि
किसीकी भी क्षति नहीं है, तब मैं यह काम करूँगा—अवश्य क
वह बहुत बड़ा घोर पाप है! जिससे किसी कालमें उद्धार
करूँगा?—नहीं, जरूरत नहीं है—" इतना कहकर वे कटार रख
इसी समय मस्तिष्क-विकारके कारण एकाएक उन्हें जान पड़ता है
उन्हें सरस्वती पुकार रही है। यह उन्हें मालूम नहीं था कि सरस
है और काशीतक उनकी खोजमें आ गई है। उसी क्षणिक भ्रमके व
प्रतीति हो गई कि सरस्वतीकी स्नेहपूर्ण आह्वान-वाणी जीवनके उसपा
द्वारा आ रही है। इसीसे विवेक और धर्म-संस्कारको दरभरके लि
प्राणसे अधिक प्यारी सरस्वतीसे मिलनेकी प्रबल इच्छाने ही म

हाथकी वह पैनी कटार उनके जरा-जीर्ण शिथिल पेटमें घुसेड़ दी। दीपक बुझ जानेसे घरमें अन्धकार हो गया। उस अन्धकारमें उस पारकी नावपर चढ़कर कविने सरस्वतीके साथ दादाकी भेंटका जो करुण दृश्य अंकित किया है, वह संसार भरके साहित्यमें अपनी तुलना नहीं रखता। दादाका चरित्र अंकित करनेमें जिस कारीगरी, कृतित्व और मानव-चरित्रके गहरे ज्ञानका परिचय दिया गया है, वह प्रत्येक देशके श्रेष्ठ नाटककारके लिए गौरवका विषय हो सकता है।

दादाकी मृत्युके बाद दूसरे ही दिन सरस्वती भी 'उस पार' दादाके पास नीच-प्रकृति स्वामीके कल्याणकी कामना करते करते चली जाती है। भगवान-दासके जीवनमें भी पूरा परिवर्त्तन हो जाता है। एक दिन माताके साथ उसने जो बुरा व्यवहार किया था, उसके लिए उसे घोर पछतावा होता है। वह अनेक स्थानोंमें माताको खोजता-फिरता अन्तको एक मसानमें उपस्थित होता है और वेश्या मुन्नीकी कृपासे ' उस पार ' जगदम्बाके हृदयमें माताके दर्शन पाता है।

चरित्र-विश्लेषण

अब हम संक्षेपमें प्रधान पात्रोंके चरित्रोंका विश्लेषण करके इस नाटकका मर्म समझानेकी चेष्टा करेंगे। इस नाटकमें स्त्री-चरित्र चार हैं—सरस्वती, मुन्नी, लक्ष्मी और हीरा।

सरस्वती नैतिक सौन्दर्यका आदर्श है। सरस्वती वह आदर्श स्त्री नहीं है, जो लात खाकर ' पें ' करके भाग जाती है, और ' तू ' करके पुकारनेसे पूँछ डुलाती हुई पैरोंपर आकर लोट जाती है। सरस्वती वह आदर्श स्त्री है, जो माताके द्रोही पतिको फटकार बताती है; भटके हुए स्वामीको कर्त्तव्यकी राह दिखाती है; पतिके असह्य अत्याचारको चुपचाप सह लेती है; गृह हीन आश्रय-हीन पतिका साथ देती है और पतिके प्राण बचानेके लिए बेखटके फाँसीपर चढ़ जाती है। इतनी बड़ी आदर्श-पत्नी, जान पड़ता है, संसारके किसी भी साहित्यमें नहीं है। सरस्वतीने मानों अपने हृदयका सारा स्नेह अपने दादाको दे डाला है। ससुराल जानेके पहले दिन शीघ्र ही होनेवाले दादाके विछोहका खयाल करके वह उन्हींके बारेमें सोचती है। यही उसकी प्रधान चिन्ता है कि

कहीं उसके वियोगमें पीछेसे उसके दादा आत्महत्या न कर लें। अपना दुःख मानों उसे कुछ है ही नहीं। यह स्थल पढ़ते पढ़ते विरहिणी छाया-सीताकी यह उक्ति याद आती है कि "आर्य्यपुत्र मेरे लिए कष्ट पा रहे हैं—धिक्कार है मुझे!" दादाके दुःखकी सहानुभूतिने उसके निज दुःखको दबा दिया है। कोमल हास्य उसके मुँहमें आकर लंबी साँसकी भापमें उड़ जाता है।

सरस्वती भगवानदासको प्यार करती है। किन्तु उस प्रेममें उच्छ्वास नहीं है। वह प्रेम भी उसने कर्त्तव्यके निकट सीखा है। स्वामीको प्यार करना स्त्रीका कर्त्तव्य है, इसीसे वह भगवानदासको प्यार करती है। उसका वह प्रेम मानों कर्त्तव्य-ज्ञानका एक अनुरोध मात्र है।

पहले और दूसरे अंकमें देखते हैं कि सरस्वती अपने स्वामीको मातृभक्तिकी शिक्षा देती है। कारण, वह समझती है कि मातृभक्ति ही सब कर्तव्योंकी जड़ है। भगवानदासने इसे अपनी स्त्रीकी धृष्टता भले ही समझा हो, मगर इसमें सन्देह नहीं कि भगवानदासको यह मातृभक्तिकी शिक्षा बिलकुल ही नहीं मिली थी। इसी कारण अपनी मृत्युका समय निकटवर्ती होनेपर भी वह भगवानदासको धर्म-विश्वासपर दृढ़ रहनेकी शिक्षा देती है। राहसे भटके हुए पतिको धर्म-मार्गमें ले जानेकी अन्तिम चेष्टा करके फिर पतिके पैरोंकी धूल मस्तकमें लगाकर गर्वके साथ फाँसीपर चढ़नेका ऐसा गौरव-पूर्ण चित्र इससे पहले बँगला-साहित्यमें किसीने न देखा होगा।

सरस्वतीके प्रत्येक वाक्यका मूल्य लाख रुपए है। अगर हम उन्हें उद्धृत करें, तो सबके सब उद्धृत करना पड़ें। यहाँ केवल एक अंश उद्धृत किया जाता है। भगवानदासने जब व्यंगके साथ कहा—"वाहरी सती!" तब सरस्वती कहती है—"देखो, मैं सती हूँ या असती, इसका विचार मैं ऐक शराबीके मुँहसे— वेश्यासक्तके मुँहसे नहीं सुनना चाहती। मेरा सतीपना मेरा धर्म है, तुम्हारा नहीं।" इसके बाद ही वह कहती है—"सतीत्व मेरा इष्टदेव है;—तुम तो उस देवताकी पूजाकी सामग्री फूल-पत्तीभर हो।" हिन्दू-ललनायें सती पतिव्रता होती हैं, पर इसका कारण पतिभक्ति नहीं है। इसका कारण यह है कि सतीत्व ही सतीका धर्म है, सतीका इष्टदेव है। शिवभक्त पुरुष जैसे

अपने इष्टदेवकी पूजाकी सामग्री होनेके कारण विल्वपत्रको पवित्र दृष्टिसे देखता है, वैसे ही सती-स्त्री भी सतीधर्मके आचरणका आधार होनेके कारण स्वामीपर भक्तिभाव रखती है। क्योंकि पतिरूप विल्वपत्रसे ही शिवरूप सतीत्वकी आराधना होती है। पतिकी अपेक्षा सतीत्वरूप देव ही सतीकी दृष्टिमें बड़ा है। इसी कारण जब भगवानदासने सरस्वतीके सतीत्वपर व्यंग किया, तब उससे सहा नहीं गया। सती स्त्री अपने पतिके सब अत्याचारोंको चुपचाप सह लेती है—लेकिन अपने सतीत्वपर अगर पति भी दोषारोप करता, है तो वह उसे नहीं सह सकती। क्योंकि सतीका धर्म पति नहीं है, सतीका धर्म सतीत्व ही है। दाम्पत्य साहित्यमें इतनी बड़ी बात पहले क्या कभी किसीने सुनी थी?

सरस्वती पढ़ी लिखी, स्नेहमयी, कर्तव्यपरायणा, रसिका, तेजस्विनी, सुन्दरी युवती है। वह बंकिम बाबूकी सूर्यमुखी, भ्रमर या गिरीश बाबूकी सरला और प्रफुल्ल नहीं है। यह बंग-काव्यसाहित्यमें एक नई ही सृष्टि है।

मुन्नीका चरित्र सरस्वतीके चरित्रकी तरह इतना मिश्र नहीं है। मुन्नीने अपनी व्याख्या आप ही की है।

पूर्वजन्मके कर्मफल और अदृष्टकी विडम्बनासे हिंदूकुलमें जन्म लेकर भी मुन्नी वेश्या है। वह असाधारण रूपवती, शिक्षिता, बुद्धिमती, सुन्दर कंठवाली गायिका है; लेकिन जोशसे भरी हुई और तबीयतदार है। मुन्नी उद्दाम लालसाकी मोहिनी मूर्ति है। मानों वह दिगन्त-विस्तृत मरुभूमिमें ग्रीष्मऋतुके सूर्यास्तका दृश्य है। वह सौन्दर्य और रूपकी गरिमासे मन और नेत्रोंको अपनी ओर खींचती है, मुग्ध करती है, मगर शीतल नहीं करती। उसके हृदयमें दारुण ज्वाला भरी हुई है। वह रूपकी गरिमा मानों इन्द्रिय-मार्गसे प्रवेश करके नस-नसमें अग्नि-प्रवाह दौड़ाकर मस्तिष्कको प्रज्वलित कर देती है। मुन्नीके गानोंसे ही उसका जीवन स्पष्टतः समझमें आ जाता है। गहरे दुःख, क्षोभ और घृणासे वह वेश्याका हृदय भी टुकड़े टुकड़े हो जाता है। वह अपनी अवस्थाके लिए सदा सन्ताप किया करती है, और अपने किये कार्यके लिए लज्जाका अनुभव किया करती है। किन्तु दूसरा उपाय न होनेके कारण वह उसी तरह अपना जीवन बिताती है। उसके लिए वह अपनेको, सारी वेश्याओंको और जो लोग पतित स्त्रियोंके अधःपतनमें सहायक होते हैं उनको, बुरा कहती है। उसके हृदयके भीतर दिन-रात समान भावसे एक महासंग्राम हुआ करता है।

प्रथम अंकमें हम देखते हैं कि मुन्नी जीविकाके लिए वेश्यावृत्ति करती है। उस्तादजीकी एक बातपर उसने वेश्यावृत्तिको छोड़ दिया, और गानेसे अपनी जीविका चलाने लगी। कोई उसे वेश्या कहता था, तो वह क्रुद्ध होती थी। दूसरे अंकके अंतिम दृश्यमें उसे हम इसी अवस्थामें देख पाते हैं। तीसरे अंकमें देखते हैं कि वह भगवानदासकी प्रणयिनी हो गई है। अपने सारे आवेगमय हृदयसे वह भगवानदासको चाहती है; किन्तु उस्तादजीकी हथौड़ीकी एक और चोटसे उसका वह स्वप्न भी मिट गया। भगवानदासके तो स्त्री है! भगवानदासका प्रेम उसको मिलना चाहिए। मुन्नी उसपर वेजा अधिकार क्यों करती है?—इसी मर्मभेदी सन्देहको मिटानेके लिए वह भगवानदासकी स्त्रीके पास दौड़ी गई। रामके दर्शनसे अहल्या जैसे शापसे छुटकारा पा गई, वैसे ही सती सरस्वतीके दर्शन होनेसे मुन्नीकी मुक्ति हो गई। घड़ी-भरमें एक बडा भारी नैतिक विप्लव हो गया। मालूम नहीं, सतीकी महिमाको इतने उज्ज्वल भावसे और कोई अंकित कर सका है या नहीं। उसके बाद अपने पिता भवानीप्रसादके भक्तिभावकी नदीमें स्नान करके उसने पुनर्जन्म प्राप्त किया और माता जगदम्बाके चरणोंमें स्थान पाया।

लक्ष्मीके चरित्रमें कुछ विशेषता नहीं है। जगतकी सभी मातायें इसी एक साँचेमें ढली हुई हैं। भगवानदास अपनी माताका ज्ञान, ध्यान, सब कुछ है। उसके मुँहमें भगवानदास है—हृदयमें भगवानदास है। वह भगवानदासके सिवा और कुछ नहीं जानती। पहले उसे यही चिन्ता देख पड़ती है कि ब्याह करके पुत्र सुखी हुआ या नहीं। पीछे मातृद्वेषी पुत्रके हृदयहीन व्यवहारसे जब वह निराश-व्यथित हृदयसे निकट आई हुई मृत्युकी अपेक्षा करती है, उस समय भी उसके मुखसे भगवानदासका ही नाम निकलता है। यही लक्ष्मीका संक्षिप्त जीवनवृत्तांत है। वह बीमारीकी हालतमें भी भगवानदासके आनेकी अपेक्षा करती है, हरएक गाड़ीका शब्द सुनकर यही अनुमान करती है कि उसपर उसका भगवानदास आ रहा है। हरएक 'माता' के संबोधनमें वह भगवानदासके ही कण्ठका स्वर सुनती है। लक्ष्मीकी 'मृत्यु' एक अत्यन्त सरल और करुण चित्र है। सबेरा हुआ है। लक्ष्मीकी शय्याके पास उसका वृद्ध पड़ौसी दीनानाथ बैठा हुआ है। लक्ष्मी दीनानाथसे कह रही है—"भगवानदास आवे तो कहना कि मरते समय मुझे कुछ कष्ट नहीं हुआ। केवल मरनेके

समय मैंने उसे एक बार देखनेकी इच्छा की थी।—ना ना, यह कहनेकी भी कुछ जरूरत नहीं है—मेरा लाल दुखी होगा।" उसके बाद गऊ रँभाई। लक्ष्मी मृत्युशय्यापरसे उत्तर देती है—मैं यहाँ हूँ। गऊके बछड़ेके देखनेके लिए लक्ष्मीका जो आग्रह देखा जाता है, उसके भीतर कौन कह सकता है कि पुत्रके प्रति उसका कितना अभिमान और स्नेह निहित है। क्रमशः भगवानका नाम लेते लेते पुण्यवती लक्ष्मीने आँखें मूँद लीं।—भगवानदास नहीं आया। यहींपर एक छोटेसे नाटककी यवनिका गिर जाती है।

हीराके चरित्रमें समझानेकी बात कोई नहीं है। भ्रष्ट स्त्रीकी अन्तको जो दशा होती है, वही दशा हीराकी हुई। अपनी खोई हुई कन्या मुन्नीको पाकर उसे आनन्द हुआ या दुःख, सो निश्चय करके कहना कठिन है। किन्तु यह अच्छी तरह जान पड़ता है कि उसका मत कुछ कुछ बदल अवश्य गया। उसकी कन्या आज उसीके पापसे वेश्या है, इस लज्जाको रखनेके लिए कहाँ स्थान है! हीरा मुन्नीकी तरफ आँख उठाकर नहीं देख सकती। स्मारक-स्वरूप मुन्नीकी एक अँगूठी लेकर इसीसे वह अदृश्य हो जाती है। आत्महत्या नहीं करती। उद्देश्य यही है कि मुन्नीकी स्मृति लेकर इसीसे वह जीवन धारण करेगी और फिर कभी कभी घूमते-फिरते आकर कन्याको देख जाया करेगी। किन्तु उस अभागिनके साथ रहना उसके लिए असंभव है। इधर भाग्यने उसे इस अवस्थासे छुटकारा दे दिया। उसके पहलेके प्रेमीने उसकी हत्या कर डाली। अनुचित प्रणयका ऐसा ही भयानक परिणाम होता है।

भोलानाथ पुराने ढंगके जमींदार हैं। परदुःखकातर, धार्मिक, कर्तव्य-परायण और दाता हैं। उनका दोष यही है कि वे स्नेहसे दुर्बलहृदय और बहुत ही सरल हैं। सभी लोग नित्य उन्हें ठगते हैं। प्रेमशंकर नित्य उन्हें सावधान करता है; पर वे हँसकर उड़ा देते हैं। कहते हैं—"यह भी कभी कहीं हो सकता है, प्रेमशंकर। मनुष्य अकृत होगा! ईश्वरकी श्रेष्ठ सृष्टि, मनुष्य-लोकमें भगवानका अवतार + + + मनुष्य अकृतज्ञ होगा। + + + मनुष्य मेरा भाई है। दुःखी पुरुषको देखकर आँखोंमें आप ही आँसू आ जाते हैं; उसे छातीसे लगानेके लिए दोनों हाथ आप ही आगे जाते हैं।" भोलानाथ ऐसे ही परदुःखकातर और विश्वप्रेमिक हैं।

बहुत लोग दान करते हैं—नामके लिए, या पुण्य-सञ्चयके लिए; किन्तु भोलानाथ दान करते हैं इस लिए कि उनसे दान किये बिना रहा नहीं जाता। इतने बड़े दानी भोलानाथ हैं। लोग उनसे रुपये उधार लेकर देना नहीं चाहते, उसकी परवा नहीं करते—कहते हैं—"बदलेमें तुम केवल मुझे प्यार करो, प्यार करो," इतने वे स्नेहदुर्बल हैं! वे संसारके निकट कुछ नहीं चाहते; चाहते हैं केवल प्रेम।

भोलानाथके विश्व-प्रेमके बारेमें दीनानाथ कहता है—उनका सारा शरीर प्रेममय हैं, और सरस्वती मानों उस प्रेमका प्राण है।

भोलानाथने सरस्वतीका ब्याह कर दिया है। उसे ससुराल भेजना होगा। वृद्ध दादा मसखरी करके अपना दुःख दबानेकी चेष्टा करते हैं। उनके मुँहमें हँसी और हृदयमें रोना है। बीच-बीचमें वह भीतरका रोना मसखरीके पर्देके बाहर फूट उठता है। जैसे—"कल इस छतके ऊपर अकेला यह आकाश होगा और मैं होऊँगा—दोनोंके बीचमें ढेरका ढेर अन्धकार होगा।" इस भाषा और भावको समझनेके लिए तहतक पहुँचनेकी आवश्यकता है। भोलानाथ पौत्री-वियोगकी भावनासे अस्थिर हो उठे हैं, बिना प्रयोजन नौकरको पुकारते हैं, सरस्वतीसे पूछते हैं कि "देख सरस्वती, बादल उठा है या नहीं।" यह सब उमड़े हुए हृदयके आवेगको छिपानेकी चेष्टामात्र है।

जब सरस्वतीका 'हत्यारा' भागा हुआ स्वामी आकर आश्रय माँगता है, तब हमें भोलानाथकी कर्तव्यपरायणताकी पराकाष्ठा देख पड़ती है। एक ओर स्नेह है, और दूसरी ओर कर्तव्य है। कर्तव्यकी जय हुई। इतने विशाल स्नेहका विजय पानेवाली कर्तव्यपरायणता कितनी बड़ी कर्तव्यपरायणता है! यह दृश्य देखकर विजयी भोलानाथकी जयध्वनि करनेको जी चाहता है। जान पड़ता है, यह जय वाटर्लू-जयसे भी बढ़कर गौरवकी सामग्री है।

सहसा भोलानाथके सरल विश्वासको एक बड़ा भारी धक्का लगा। इस महाविपत्तिके समय किसीने उन्हें दस हजार रुपये उधार नहीं दिये—, उन्हीं भोलानाथको—जो दोनो हाथों धन लुटाकर आज कंगाल हो गये। भोलानाथ इस धक्केको नहीं सह सके। वे मानों पागल हो गये। सरस्वतीकी काल्पनिक मृत्युने उस डावाँडोल विचारशक्तिको गिरा दिया।

इस अवस्थामें हम जब भोलानाथको पाते हैं, तब वे सोचते हैं--to be or not to be--इस समय कभी कभी उन्हें ज्ञान होता है, और फिर वही पागलपन आ जाता है। उन्होंने विचार करके आत्महत्याका इरादा छोड़ दिया। इसी समय फिर पागलपनने आकर उनके चित्तपर अधिकार कर लिया। वे चन्द्रमाके पास देखने लगे, सरस्वती उन्हें जीवनके उस पारसे बुला रही है। विचारशक्तिने समझाया, नहीं, यह कल्पना है। उसके बाद सच-मुच ही सरस्वतीका स्वर सुन पड़ा। एक बार नहीं बार बार। अब उन्हें इसमें सन्देह नहीं रहा कि मरी हुई सरस्वती ही उन्हें पुकार रही है। तब उन्होंने परलोकमें संग पानेकी प्रबल कामनाकी ताड़नासे इस जीवनको त्याग कर दिया। आत्महत्या करनेके पहले भोलानाथने इस विषयपर बहुत कुछ विचार किया। उनकी समझमें मनुष्य-जीवन दैवसे प्राप्त है। इस कारण दैवसे मिली हुई वस्तुका अपनी इच्छाके अनुसार व्यवहार करनेसे समाजकी कोई हानि नहीं है। जिस कार्यसे समाजकी कोई हानि नहीं, वह पाप नहीं है, इसीसे आत्महत्या पाप नहीं है। मनुष्य सदा चिन्ता और मनोवृत्तिके द्वारा सञ्चालित हुआ करता है। मनुष्य-चरित्रमें कभी कोई कार्य संगत होता है और कभी कोई कार्य असंगत होता है। इसी कारण उसका कुछ निश्चय नहीं है। क्योंकि वह कार्य घटना और उस समयकी पारिपार्श्विक अवस्थाके ऊपर निर्भर है। मस्तिष्ककी विकृत अवस्थासे उत्पन्न हुई आन्तरिक दुर्बलताको दूर करनेका बाहरी शक्तिके प्रयोगके सिवा अन्य उपाय नहीं है। भोलानाथने जिस समय आत्महत्या की है, उस समय उनके ऊपर वही बाहरका सबल शासन नहीं था। इसीसे उन्होंने आत्महत्या कर डाली—उनके इस कार्यमें बाधा देनेवाला कोई नहीं था।

इस नाटककी ट्रेजिडी भोलानाथकी मृत्युमें नहीं है। इस नाटककी ट्रेजिडी भोलानाथके विवेकके विलोपमें है। इतने बड़े आदर्श मनुष्य होकर भी अत्यन्त अधिक स्नेह-दुर्बलताकी ताड़नासे ज्ञान खोकर अन्तको उन्होंने आत्महत्या कर ही डाली। यही ट्रेजिडी है। Too much sail and no ballast होनेसे जो होता है वही हुआ। नाव डूब गई। यही ट्रेजिडी है। और वह शरीरके ध्वंसमें नहीं, मनुष्यत्वके ध्वंसमें है।

भगवानदास शिक्षित है, मेधावी है, किन्तु उसके चरित्रमें नैतिक बल नहीं है। उसके चरित्रमें विवेक और कर्त्तव्य-ज्ञानका सम्पूर्ण अभाव है। सर-

स्वतीके प्रति वह मोहित है । पर वह मोह प्रेम नहीं है । उसे यौवन-आसक्ति कह सकते हैं । भगवानदासने खुद अपने चरित्रकी संक्षेपमें यों व्याख्या की है--" जिसने स्त्रीके लिए माताका अनादर किया, वेश्याके लिए स्त्रीको छोड़ दिया और डाहके मोर वेश्याकी हत्या की । "

भगवानदासकी मातृभक्ति बहुत ही तरल है--वह कमलके पत्तेपर पानीकी बूँदकी तरह सदा हिला-डुला करती थी । भगवानदास खुद इस बातको समझ गया था । इसीसे स्त्रीके घर आनेपर वह काँप उठा था । उसने मातासे कहा था-" मा, घरमें चोर घुस आया है । " भगवानदास ब्याहके बाद मानों माताकी सुध भूलकर दिनरात रूपवती युवती स्त्रीके चरणोंके पास बैठकर कामकी सेवामें लग गया, और ज्यों ही स्त्रीकी आकर्षणी शक्तिमें 'भाटा' पड़ना शुरू हुआ, त्यों ही वह मुन्नीके रूपकी आगमें पतंगकी तरह फाँद पड़ा । भगवानदास भीरु और कापुरुष था । मुन्नीपर पिस्तौल दागनेके बाद जब वह लापता हुआ, तब उसे पछतावेने घेरा । वह हरघड़ी मरी हुई माताका मुख देखने लगा । इसीसे वह मदिरा पीने लगा । पीते पीते उसकी मात्रा बढ़ाने लगा । लेकिन सदाका स्वभाव एक दिनमें नहीं जाता । इसीसे विचारालयमें आप छुटकारा पानेके लिए उसने अपनी स्त्रीको हत्याका अपराधी बतलाया । किन्तु इस समय उसके हृदयमें विवेकके साथ कुप्रवृत्तिका एक युद्ध चल रहा है । विवेक सजग हुआ है । जिस समय सरस्वती फाँसीपर चढ़नेवाली होती है, उस समय वह मन-ही-मन अपने निन्दित नीच जीवनको धिक्कार अवश्य देता है, मगर दोष स्वीकार करनेका उसे साहस नहीं होता । तथापि हृदयमें कोमल प्रवृत्तिके संचारका कुछ कुछ अनुभव करनेके कारण वह सरस्वतीकी कल्पित मृत्युके बादसे इधर-उधर दौड़ता फिरता है । प्रायश्चित्तके उपरान्त मुन्नीकी कृपासे वह भी जगन्माताके चरणोंमें स्थान पाता है ।

भगवानदासमें अगर मातृभक्ति होती, तो उसका सर्वनाश न होता । जैसे ही उसने मातृभक्ति छोड़ी, वैसे ही वह नीचे गिरने लगा । उसका वह पतन तेजीके साथ और गहरा हुआ । ग्रन्थकारने भगवानदासके चरित्रमें मातृ-निरादार और कर्त्तव्यहीन अन्ध रूपजनित लालसाका भयानक परिणाम दिखाया है ।

भगवानदास बंकिमबाबूका गोविन्दलाल नहीं है, नरेंद्रनाथ नहीं है, योगेश नहीं है । भगवानदास भगवानदास ही है ।

भवानीप्रसाद एक निरीह भक्त हिन्दू है। वह स्त्री और कन्याको लिए दूर देहातमें—निरालेमें—रहता था। दुराचारी गौरीनाथ उसकी स्त्रीको झाँसा देकर घरसे निकाल ले गया। इसी दुःखसे भवानीप्रसाद संसार-त्यागी संन्यासी हो गया। दुर्बलके लिए ईश्वरके चरणोंमें नालिश करनेके सिवा और उपाय नहीं। इसीसे भवानीप्रसाद ईश्वर और जगदम्बाका भजन करता-फिरता है। अपने दुःखको दबाकर, जीवनके सब अत्याचारोंको भूलकर उसने अपने अस्तित्वको दूसरेके अस्तित्वमें लीन कर दिया है। वह संसारको दर्शककी दृष्टिसे देखता है। किन्तु उसके लिए उसके हृदयमें मानों कुछ यन्त्रणा छिपी हुई है। सभी कुछ न कुछ करते हैं, मगर वह खुद हलन्त अक्षरके नीचे "हल-चिह्न" की तरह पड़ा हुआ है—यह कहकर वह अपने हृदयका खेद प्रकट करता है। उसका हृदय सहानुभूति और अनुकम्पाके भावसे भरा हुआ है। वह खूब दिल्लगीबाज़ और व्यंग-प्रिय है। किन्तु उसकी दिल्लगी विषादसे भरी और व्यंग हृदयस्पर्शी है। मुन्नीके घरके दर्वाजेके सामने हीरासे मुलाकात हो जानेपर भवानीप्रसादके निर्विकार चित्तमें भी कुछ चंचलता उपस्थित होते देखी जाती है। मुन्नी अपना परिचय देकर जब चली जाती है, तब रुँधा हुआ सन्तान-स्नेहका सोता भवानीप्रसादके चिरतप्त हृदयको प्लावित कर देता है। उस समय भवानीप्रसाद जो गीत गाता है, उससे यह मालूम पड़ता है कि वह अपने उमड़े हुए हृदयके भावको दबानेकी चेष्टा कर रहा है। उसे आशंका होती है कि सन्तान-स्नेहकी प्रबल बाढ़में कहीं भगवतीकी भक्ति न बह जाय। भवानीप्रसाद एक उदास, अनासक्त, शाक्त पुरुष है।

कालीचरणका चरित्र एक नई ही सृष्टि है। पहले देखनेसे जान पड़ता कि कालीचरण जैसे नीमचाँद-दत्तका (एक बंगला नाटकका पात्र) दूसरा संस्करण है। किन्तु उसके चरित्रके सम्बन्धमें कुछ आलोचना करनेसे ही यह भ्रम शीघ्र ही दूर हो जाता है। कालीचरण यद्यपि नीमचाँदकी तरह शराब पीता है और Full of quotations है, तो भी वह एक सत्पुरुष है। बुरे संगमें शराब पीता है, मगर बुरे संगमें शामिल नहीं होता। किसीके काममें दस्तन्दाजी नहीं करता। किसी आचरणसे विचलित नहीं होता। गौरीनाथके यहाँ मुफ्त शराब मिलती थी, इसीसे उसकी सोहबतमें अकसर कालीचरण देख पड़ता है। कालीचरण दार्शनिक पुरुषकी तरह मानव-चरित्रको देखना

पसन्द करता है, इसीसे सब तरहके आदमियोंकी सोहबतमें शामिल होता है। लेकिन सभी बातोंमें अपनी स्वतन्त्रताको बनाये रखकर चलता है। निर्लिप्त भावसे अपनी चिन्तामें आप मगन रहकर समय-समयपर समयानुकूल दो-एक मन्तव्य प्रकट करके चला जाता है। उन्हें कोई समझे या पागलपन कहकर उड़ा दे, इससे उसका कुछ बनना-बिगड़ता नहीं।

किन्तु भोलानाथकी भलमनसीने क्रमशः कालीचरणके चित्तपर अपना अधिकार जमा लिया। सर्वस्व खोकर ठगे गये भोलानाथकी अवस्था देखकर उसके दार्शनिक हृदयको भी एक धक्का लगा। जब चुप रहनेसे काम नहीं चला। तब कालीचरणने शिवदयाल और कामताप्रसादसे कहा—Tell the truth and let the world sink. (भलीभाँति और उचित कार्य करो; संसारको डूबने दो—उसकी चिन्ता न करो।)

कालीचरण दर्शक और दार्शनिक है। नीमचाँद पतित है। कालीचरण एक बार भी धर्मके मार्गसे पतित नहीं हुआ। चरित्रगत विभिन्नताके कारण कालीचरण नीमचाँदसे बिलकुल अलग है।

गौरीनाथके समान कृतघ्न नरपिशाच इस मनुष्यसमाजमें अनेक हैं। धनोपार्जन और इन्द्रियलिप्सा ही उनके जीवनका एक मूलमन्त्र है। इन दोनों बातोंके लिए गौरीनाथने मनुष्यत्व, दया, धर्म, विवेक आदि मानव-हृदयके सब सद्गुणोंको तिलाञ्जली दे दी। वह शैतानसे भी क्रूर, सर्पसे भी दुष्ट और भिक्षुकसे भी अधिक चक्षु-लज्जा-विहीन है। उसने खुद कहा है कि ऊपर चढ़ना हो तो पापके भारी बोझको ठेलकर चढ़ना होगा; नीचे उतरनेके समय बिना परिश्रम उसी बोझसे नीचे उतरना होगा। जो उसने कहा, वही कार्य-द्वारा कर दिखाया।

प्रेमशंकर एक तरफ जैसे कर्त्तव्य-परायण, उपकारी, विश्वस्त और साधु कर्मचारी है, वैसे ही दूसरी ओर हित चाहनेवाला और कृतज्ञ आत्मीय है। न्यायपरायण और स्पष्टवादी होनेके कारण वह कुछ भी छुपा नहीं रखता। जिसको उसने कर्त्तव्य और न्यायसंगत समझा वह करनेमें उसने कभी आनाकानी नहीं की—किसीका मुँह नहीं ताका। सुदिन और दुर्दिनमें समान भावसे वह भोलानाथका अनुरागी और आज्ञाकारी रहा। एकाग्रता और एकनिष्ठाके कारण प्रेमशंकरका चरित्र भी आदर्श जान पड़ता है।

दीनानाथ कोमल-हृदय और सरल बुद्धि पुरुष है। वह दुर्दिनका साथी और व्यथितका बन्धु है। लक्ष्मीकी मृत्युशय्याके पास वह रातभर जागता रहा और भोलानाथकी पागलपनकी हालतमें वही उनका साथी रहा। भोलानाथका जमाना जब अच्छा था तब वह उनके पास आया भी नहीं। किन्तु भोलानाथके घोर दुर्दिनके समय, जब संसारके सब लोगोंने उन्हें छोड़ दिया, उपकृत लोग उपकार भूलकर उनकी निन्दा करने लगे, तब दीनानाथ उनके पास उपस्थित हुआ और अन्ततक घड़ीभरके लिए भी उसने उनका साथ नहीं छोड़ा।

दीनानाथके बीते हुए जीवनके सम्बन्धमें कुछ कहा नहीं गया। लेकिन यह स्पष्ट जान पड़ता है कि दीनानाथका बीता हुआ जीवन सुखमय नहीं था और बहुओंपर उन्हें विशेष भक्ति नहीं थी। कविने उसके व्यतीत जीवनको पाठकोंके निकट पहेली सा ही बना रक्खा है।

दीनानाथ एक आदर्शचरित पुरुष है। अपने आराम और सुखका उसको खयाल ही नहीं है।

यह निबन्ध समाप्त करनेके पहले ग्रन्थकारकी रसिकता या हँसी-मजाकके सम्बन्धमें कुछ आलोचना किये बिना आलोचना असमाप्त ही रह जायगी। द्विजेन्द्रलालकी विनोदप्रियता देशभरमें प्रसिद्ध है। किन्तु इस नाटकमें जिस रसिकताकी अवतारणा की गई है, वह बिलकुल नये ढंगकी है। इस रसिकताके दो विभाग किये जा सकते हैं। एक श्रेणीकी रसिकता तो मानों प्रातःकालकी अरुण-किरणोंमें तरह तरहकी रंगीन पताकायें हैं। और, दूसरी श्रेणीकी रसिकता मानो अन्त्येष्टिसंमयकी बड़ी भारी काली पताका समवेदनाके गहरे दुःखसे सिर झुकाये हुए संकुचित भावसे खड़ी है। यह सर्ववादिसम्मत है कि हँसी और आँसू, सरलता और गांभीर्य, मधुर और करुणका एकत्र समावेश करनेमें द्विजेन्द्रलालके समान और लेखक नहीं है। किन्तु ऐसी करुण-गम्भीर रसिकता शायद आजतक और कोई कवि न लिख सका होगा। इस नाटकमें कविने अपनी रसिकताका चरम विकास दिखा दिया है। भोलानाथ और भवानीप्रसादकी रसिकतामें विशेषता यह है कि मुँहमें हँसी और आँखोंमें आँसू देख पड़ते हैं।

इस नाटकके गाने बहुत ही अच्छे हैं। ग्रन्थमें स्थान-स्थानपर समयोपयोगी खूब ऊँचे भावोंकी अवतारणा की गई है। ग्रन्थकी भाषा ओजस्विनी और भाव उपयोगी हैं।

नाटकमें केवल आदर्शचरित्र अंकित होने चाहिए—इसके कुछ माने नहीं। शेक्सपियरके श्रेष्ठ नाटकोंके नायकोंमेंसे कोई भी आदर्शचरित्र नहीं है। शकुन्तलाके दुष्यन्त या उत्तरचरितके राम भी आदर्शपुरुष नहीं हैं। उत्कृष्ट नाटक वही है, जिसमें घटना-संघातद्वारा चरित्रका आन्दोलन दिखाया जाय। किन्तु आदर्शचरित्र बहुत कुछ निर्विकार ही होता है। हाँ, यह बात अवश्य है कि अधम चरित्रवाले नायकको लेकर नाटककी रचना नहीं होती। भोलानाथका चि[illegible] मनुष्यजातिका आदर्श बनाकर चित्रित नहीं हुआ। वे एक भले आद[illegible] थे।—सिर्फ यही दिखाया गया है।

—श्री अधरचन्द्र मजूमदार

उस पार

पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान—लक्ष्मीका घर

समय—प्रातःकाल

[घरके आँगनमें, लक्ष्मी, उसका बूढ़ा परोसी दीनानाथ और परोसिनें बैठी हैं ।]

लक्ष्मी—आज बड़े आनन्दका दिन है । आओ, मेरे इस आनन्द शरीक होओ । आज बड़े आनन्दका दिन है ।

पहली परोसिन—सो तो होना ही चाहिए । छोटे लड़केका व हुआ है, फिर आनन्द क्यों न होगा ?

दूसरी परोसिन—बड़ी अच्छी बहू है । चाँद-ऐसी बहू है ।

तीसरी परोसिन—अँधेरे घरमें उजियाला करनेवाली बहू है ।

पहली परो०—क्योंजी, बहूका बाप क्या काम करता है ?

दीनानाथ—बहूके बाप-मा कोई नहीं है।

दूसरी परो०—फिर कौन है ?

दीना०—बहूके दादा (बाबा) हैं।

तीसरी परो०—और दादी ?

दीना०—दादी भी नहीं है।

पहली परो०—आहा ! तो बेचारीकी देख-भाल करनेवाला कोई नहीं है।

दीना०—दादा हैं। बहूके मा-बाप भी इस तरह उसका पालन-पोषण और देख-भाल नहीं कर सकते, जिस तरह कि उसके दादा इतने दिनोंसे करते आ रहे हैं।

दूसरी परो०—हाँ !

दीना०—बूढ़ा दिनरात उसे अपनी छातीसे लगाये रहता था; अपने हाथों खिलाता-पिलाता था; और—कहते कहते मेरी आँखोंमें आँसू भरे आते हैं—

तीसरी परो०—क्यों भला !

दीना०—मैं भी बूढ़ा हो गया हूँ; लेकिन भोला दादा ऐसा बूढ़ा मैंने कोई नहीं देखा। इधर तो दान देते देते फकीर हो गया है और उधर मानों साक्षात् स्नेहकी मूर्ति है। उस स्नेहका प्राण यह पोती है। एक दिन—जब उसकी यह पोती चार बरसकी होगी—मैं सबेरे बूढ़ेके पास गया। देखा कि बूढ़ेके मुँहमें रस्सी बाँधकर, उसकी पोती, उसकी पीठपर सवार है, और एक कमची हाथमें लिये हुए 'हट हट' कहती हुई सटकार रही है। बूढ़ा घुटनोंके बल पोतीको पीठपर सवार किये बरामदे भरमें घूम रहा है।

लक्ष्मी—आहा !

प० परो०—कहते क्या हो जी, तब तो बूढ़ा पूरा पागल है।

दू० परो०—बूढ़ा मर जायगा ।

ती० परो०—चाहे जो हो, परन्तु बहन, तुमने खासी बहू पाई है ।

दीना०—बहू पाई है, लेकिन शायद लड़का हाथसे खो दिया है ।

लक्ष्मी—यह क्या कहते हो भैया—ऐसा लड़का—वह तो मेरे सिवा किसीको जानता ही नहीं ।

प० परो०—माके ऊपर जान देता है ।

दू० परो०—समझदार है ।

ती० परो०—पढ़ा लिखा है ।

दीना०—चाहे जितना समझदार हो, माको चाहे जितन चाहता हो—पर ब्याह हो जानेपर लड़का फिर वैसा नहीं रहता ।

लक्ष्मी—ना ना, यह बात न कहो भैया । मेरा ऐसा लड़का—

प० परो०—अपने हाथों पाल-पोसकर इतना बड़ा किया है ।

दू० परो०—उसकी माँदगी-बिरामीमें रात-रातभर जागकर अपनी देह खपाई है ।

ती० परो०—नव महीने पेटमें रक्खा है ।

लक्ष्मी—कहते क्या हो भैया ! सदासे ही वह माके सिवा और किसीको नहीं जानता । आज जब मैं मौतके मुँहका कौर बन रही हूँ, तब वह मुझे छोड़कर गैर बन जायगा ?

दीना०—तुम्हारी इधर भी मौत है, और उधर भी मौत है ।

(प्रस्थान)

प० परो०—ये कैसी कुलच्छनी बातें हैं ।

लक्ष्मी—क्योंजी, ऐसा लड़का गैर हो जायगा ?—

ती० परो०—ऐसी बातें सुनती क्यों हो बहन !

लक्ष्मी—यही अगर हो, तो हो, वह तो सुखी होगा।

दू० परो०—सुखी क्यों न होगा ! ऐसी चाँद ऐसी बहू जो पाई है

प० परो०—जैसे साक्षात् लक्ष्मी है।

दू० परो०—शिव-पार्वतीका ऐसा जोड़ा है।

[भगवानदासका प्रवेश]

लक्ष्मी—वह बच्चा आ गया !—मुँह जैसे सूख गया है।

परोसिनें—तो अब हम जाती हैं बहन।

लक्ष्मी—जानेके लिए कैसे कहूँ !

(परोसकी स्त्रियोंका प्रस्थान)

लक्ष्मी—तेरा मुँह सूखासा देख पड़ता है, तबीयत कैसी है ?

भग०—तबीयत अच्छी है-तुमने अभीतक भोजन नहीं किया ?

लक्ष्मी—नहीं बेटा।

भग०—तो जाकर भोजन करो। नहीं तो तुम्हारी तबीयत खराब हो जायगी।

लक्ष्मी—इतने सुखमें तबीयत खराब कहाँसे हो जायगी !—बेटा, तुझे बहू पसन्द आई ?

भग०—तुम पहले जाकर भोजन करो। नहीं तो मैं तुम्हारी कोई बात नहीं सुनूँगा।

लक्ष्मी—जाती हूँ —यह क्या, तेरी आँखोंमें आँसू कैसे देख पड़ते हैं !—क्या हुआ है बेटा !

भगवान०—मा !

लक्ष्मी—क्यों बेटा !

भगवान०—मैया ! (माताकी छातीमें मुँह छिपा लेता है।)

लक्ष्मी—(कंपित स्वरसे) यह क्या बेटा ! रोता क्यों है ?

भगवान०—कहाँ रोता हूँ ! लेकिन यह क्या हुआ मैया ! आज चित्त इतना व्याकुल और उचाट क्यों हो रहा है ? कोई जैसे मुझे तुम्हारे पाससे छीनकर ले जाने आया है। घरमें चोर घुस आया है। मुझे छोड़ो नहीं मैया।

लक्ष्मी—बेटा, तू यह क्या कह रहा है ! अरे ! यह क्या ! तू तो काँप रहा है—

भगवान०—माळूम नहीं—क्यों !—नहीं मा, चलो, भोजन करो। मैं आज तुमको अपने आगे बिठाकर खिलाऊँगा।

लक्ष्मी—क्यों !

भगवान—मेरा यही जी चाहता है।—चलो मा।

(दोनोंका प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

स्थान—भोलानाथके महलकी एक छत

समय—सन्ध्या

[भोलानाथ और सरस्वती]

भोला०—क्यों बिटिया, कैसा है ! दूल्हा पसंद आया ?

सर०—जाइए !

भोला०—जाऊँगा तो अवश्य ही ! जानेको तो बैठा ही हूँ। तो भी दो दिनकी देर और नहीं सही जाती ?—दूल्हा पसंद आया ?

सर०—जाइए ! मैं अब आपसे नहीं बोलूँगी।

भोला०—मुझसे अब क्यों बोलेगी ! मैं तो बूढ़ा हो गया हूँ।— सरस्वती !

सर०—दादा !

भोला०—मुझे पहलेकी तरह प्यार करेगी ?

सरस्व०—करूँगी, जबतक जियूँगी, प्यार करूँगी ।

भोला०—वैसे ही गलेसे लिपटकर दादा कहकर पुकारेगी ? वैसे ही भोजनके समय पास आकर बैठेगी ? वैसे ही प्यार करके—

सरस्व०—दादा !—मेरे चले जानेसे आपको दुःख होगा ?

भोला०—तुझे क्या जान पड़ता है ?

सरस्व०—तो भी पूछती हूँ, जवाब दीजिए । बड़ा कष्ट होगा ?

भोला०—कष्ट !—दोनों आँखें फूट जानेसे मनुष्यको क्या होता है सरस्वती ? तेरे मा नहीं थी, बाप भी नहीं था; तुझे अपने हाथसे खिला-पिलाकर इतना बड़ा किया है । तेरे मुँहकी तरफ टकटकी लगाकर देखता रहा हूँ—आँखें चौंधिया गई हैं; तो भी देखनेसे जी नहीं भरा है । तुझे कलेजेसे लगाकर रक्खा है—इतने प्यारके जोशसे कलेजे लगाया है कि तू नींदकी खुमारीमें चिल्ला उठी है । उसके बाद बिछौने-परसे उठकर बरामदेमें टहल-टहलकर मन-ही-मन सोचता रहा हूँ कि किसे इतना प्यार कर रहा हूँ ? और क्यों कर रहा हूँ ?—यह मेरी कौन है ? अपने कलेजेका खून पिलाकर काली नागिन पाल रहा हूँ । जब यह चली जायगी, तब जिस हृदयसे मैं इसे चाहता हूँ उसीको डस-कर चली जायगी । मैं यन्त्रणासे छटपटाऊँगा, और यह एक बार फिरकर देखेगी भी नहीं ।

सर०—दादा, मैं सुसराल न जाऊँगी ।

भोला०—तूने तो कह दिया कि न जाऊँगी; लेकिन वह क्यों छोड़ेगा ?—उसने मानों दाम देकर मोल ले लिया है; अब रस्सीसे बाँधकर खींचता-घसीटता हुआ ले जायगा ।

सर०—मेरा व्याह ही क्यों किया था दादा ?

भोला०—आगे चलकर तेरी समझमें आ जायगा कि क्यों तेरा ब्याह किया; क्यों अपना हृदय अपने हाथोंसे निकालकर फेंक दिया; क्यों अपनी दोनों आँखें निकालकर फेक दीं। एक दिन यह सब तेरी समझमें आ जायगा।

सर०—क्यों ब्याह किया?

भोला०—तेरे ही सुखके लिए बिटिया।

सर०—मेरे सुखके लिए? इस ब्याहसे मुझे सुख नहीं मिलेगा।

भोला०—यह क्यों बेटी!

सर०—सो तो मैं नहीं जानती; लेकिन मेरा जी यही कह रहा है।—दादाजी, मैं आपको छोड़कर न जाऊँगी।

भोला०—जायगी क्यों नहीं! सिर्फ जायगी ही नहीं—एक सालके बाद उलटे कहेगी—मैं दादाजीके पास लौटकर न जाऊँगी।

सर०—हिश्—

भोला०—तब देख लेना!—तब दिन-रातमें एक बार भी तुझे अपने बूढ़े दादाकी याद न आवेगी।

सर०—मैं नहीं जाऊँगी। दादाजी, मैं आपको छोडकर न जाऊँगी। (गलेसे लिपट जाती है।) मैं नहीं जाऊँगी।

भोला०—जायगी नहीं? नहीं बेटी, मुझे कष्ट न होगा, तू जा। सह लूँगा।—सह लूँगा। जानती है, तेरे चले जानेपर मैं क्या करूँगा?

सर०—क्या करिएगा? आत्महत्या करिएगा?

भोला०—हिश्! तेरे लिए मैं आत्महत्या करूँगा? बड़ा गुमान है!—अरे तेरे विछोहमें मैं रास्तोंम दौड़ता हुआ और यह कहकर रोता हुआ नहीं फिरूँगा कि "कहाँ गई सरस्वती, कहाँ गई सरस्वती"।

[सकटूका प्रवेश]

भोला०—नहीं, कुछ नहीं।—जाओ।—

(सकटूका प्रस्थान)

सर०—दादाजी, आप यह क्या कर रहे हैं?

भोला०—(हँसकर) कहाँ—कुछ भी तो नहीं करता!—अच्छा सरस्वती, तो तू कल जायगी?—

सर०—कहती तो हूँ दादाजी, मैं नहीं जाऊँगी।

भोला०—यह भी कहीं हो सकता है!—व्याहके वाद सुसराल जाना ही पड़ता है। उसके वाद फिर आ जाइयो। तेरा दादा इसी तरह तेरी राह देखा करेगा।

[दरवानका प्रवेश]

दरवान—गुमाश्ताजी आये हैं।

भोला०—क्यों?

दरवान—मुलाकात करना चाहते हैं।—

भोला०—इस समय नहीं हो सकती।

दरवान—उन्होंने कहा है, वड़ा जरूरी काम है।

भोला०—इस समय नहीं होगी। जानेके लिए कह दे।—

(दरवानका प्रस्थान)

भोला०—इस समयको व्यर्थ नहीं गवाँ सकता। इस समयकी हरएक घड़ी पवित्र है। यह समय वर्षाऋतुके आकाशमें धूपकी उज्ज्वल हँसीके समान वहुत देर तक नहीं रहेगा। कल दीपक वुझ जायगा और सव तरफ अन्धकार छा जायगा।

[प्रेमशंकरका प्रवेश]

भोला०—कौन! प्रेमशंकर!—क्या खवर है?

प्रेम०—शिवदयालु आये हैं।—नीचे वैठे हैं।

भोला०—ओः !—उन्हें लड़कीकी शादी करनी है । ठीक है, मैंने उनसे आज आनेके लिए कहा था ।—प्रेमशंकर, जाकर उन्हें ५०००) रुपये दे दो ।

प्रेम०—लिखापढ़ीके लिए वे तमस्सुक नहीं लाये हैं ।

भोला०—कुछ जरूरत नहीं ।—भले आदमी हैं ।

प्रेम०—मनुष्यका इतना विश्वास न कीजिए साहब !

भोला०—क्यों ! मनुष्यका विश्वास न करूँ ? ईश्वरकी श्रेष्ठ सृष्टि, पृथ्वीपर भगवानके अवतार, सब गुणोंके आधार, मनुष्यका विश्वास न करूँ ? जिस रूपमें हम देव-देवियोंके स्वरूपकी कल्पना करते हैं, उसपर अविश्वास करूँ ? जगतके प्रभु, समाजके शासक, सभ्यताके पुत्र, धर्मके स्थापक, ज्ञानके गुरु, स्वार्थत्यागके शिष्य, स्नेहके दास, मनुष्यका विश्वास न करूँ ? कहते क्या हो प्रेमशंकर, तो फिर क्या पशुका विश्वास करूँ ?

प्रेम०—बहुतसे मनुष्य ऐसे हैं, जो पशुओंसे भी अधम हैं ।—जो भाइयोंपर अत्याचार करते हैं, बन्धुओंका सर्वनाश करते हैं, स्त्रीको मारते हैं, बूढ़े बापको धक्का देकर इस संसारसे खिसकाना चाहते हैं—

भोला०—छी छी ! मनुष्यकी निन्दा मत करो । मनुष्य मेरा भाई है । मैं मनुष्यकी निन्दा नहीं सुनना चाहता ।—जाओ, गुमाश्तेसे कह दो—

प्रेम०—लेकिन—

भोला०—जाओ भैया !

(प्रेमशंकरका प्रस्थान)

भोला०—सरस्वती !

सर०—क्यों दादाजी !

भोला०—बात क्यों नहीं करती ?—चुप क्यों है ?

सर०—क्या बात करूँ दादाजी ?

भोला०—क्या बात करेगी ! —यह भी ठीक है । अब जितनी बातें हैं, सब उसी नई मूँछ, घुँघराले बाल और टेढ़ी माँगके साथ होंगीं ।—क्यों ?

सर०—जाइए !

भोला०—मेरे साथ तो बस यही एक ही बात है—' जाइए ' । कहाँ जाऊँ ? तुझे छोड़कर कहीं जानेको जी नहीं चाहता । तेरी यह मीठी आवाज विहाग-रागकी तरह आकर जैसे मेरी आँखोंको चूम लेती है, देह मानों किसी नशेमें ढीली पड़ जाती है, और इतनेहीमें जैसे दो कोमल गोल गोल भुजायें फूलमालकी तरह मेरे गलेमें आकर पड़ जाती हैं !—क्यों कैसी कविता की ?

सर०—वाह !—आप कविता क्यों नहीं लिखते दादाजी ?

भोला०—तुक नहीं मिलती—अगर कोई तुक मिला देता, और अक्षरोंका हिसाब रखता, तो मैं एक बहुत बड़ा कवि हो जाता । लेकिन तुक नहीं मिलती ।

सर०—क्यों—बेतुकी कविता लिखिए ।

भोला०—बेतुकी कविता करनेवाले अनेक हैं । बेचारे बड़े परिश्रमसे बेतुकी कविता करते हैं । उनकी कीर्त्तिमें अपना साझा लगाना ठीक नहीं, इसीसे नहीं लिखता ।

सर०—इसे देशका और मातृभाषाका सौभाग्य समझना चाहिए !

भोला०—वह सूर्य अस्त हो गये !—देख, उधर देख सरस्वती !—आकाशमें जैसे कोई तरह तरहके रंगोंका जाल बुन रहा है ।—कैसा सुन्दर दृश्य है !

सर०—(देखकर) वाह, कैसा सुन्दर है !

भोला०—कल शामको इसी छतके ऊपर मेरे और इस आकाशके बीचमें केवल ढेरका ढेर अन्धकार ही होगा।—वह सुन सरस्वती।

सर०—क्या दादाजी ?

भो०—गाना सुन पड़ता है ?

सर०—(कान लगाकर) हाँ—(आग्रहके साथ) कौन गा रहा है दादाजी ?

भोला०—यह भवानीप्रसाद एक कालीका उपासक भक्त है। मैंने इसे अपने पास रख लिया है—विचित्र मनुष्य है !

सर०—कैसे !—

भोला०—बहुत बातचीत नहीं करता। वह देखो, अपनी धुनमें मस्त होकर गाना गाता जाता है। जैसे उसने अपना सारा हृदय, अपना यह लोक और परलोक इसी गानेमें ढाल दिया है ! वह देखो, गाना गाते गाते इधर ही आ रहा है।—सुन।

(गाते गाते भवानीप्रसादका प्रवेश और प्रस्थान)

भूप—तिताला

अबकी तोहि पहिचान्यो श्यामा, अब मैं तोहि न छोड़ौं।
भवके दुःख-जलन सब भूल्यो, तोसों नाता जोड़ौं॥ अब०॥
गोरखधंधा बीच फँसायो, माता होय रुआयो।
बाल-विलाप सुने माताकी ममता हिय भरि आयो॥ अब०॥
हाथ गह्यो मेरो, मैं मैया भीति-भावना भूल्यो।
आँसू पोंछि गोद मोहि लीन्ह्यो, हृदय हर्षसों फूल्यो॥ अब०॥
भवसागर भटक्यो, नहिं पायो तिहिको कूल-किनारा।
देखि सुध्रुवतारा तू तारा, पायो सहज सहारा॥ अब०॥

भोला०—पृथ्वी पवित्र हो गई—मेरा हृदय जगदम्बाकी भक्तिसे भर गया।—सरस्वती ! (सरस्वतीके गलसे लिपट जाते हैं)

सर०—दादाजी ! (एक हाथ भोलानाथकी कमरमें डालकर दूसरे हाथसे कपड़ेसे आँसू पोंछती है)

तीसरा दृश्य

स्थान—गौरीनाथके घरका बाहरी बैठकखाना

समय—रात्रि

[गौरीनाथ, प्रेमशंकर और कालीचरण बैठे हैं।]

गौरी०—दुनियाभरके लोग भोलानाथके गुण गाते देख पड़ते हैं ! उसकी जमींदारीकी ऐसी आमदनी है, इतनी आमदनी है ! फिर पोतीके ब्याहमें क्यों ऋण लिया था ?

प्रेम०—मौका पड़नेपर ऋण दिया भी जाता है, लिया भी जाता है।

गौरी०—उन्हें उधार देते तो कभी नहीं देखा, लेते ही देखा है।

प्रेम०—वे उधार कम देते हैं,—देते हैं तो एकदम दे डालते हैं।

गौरी०—एकदम दाता कर्ण हैं।

प्रेम०—और नहीं तो क्या !

गौरी०—दो दिनों बाद हाथ धोकर राहमें बैठना पड़ेगा, और क्या !

कालीचरण—बहुतोंके हाथ धोनेसे ही साफ हो जाते हैं।-'साफ' शब्दका यहाँपर मैं विकल्पमें व्यवहार करता हूँ, याद रक्खो प्रेमशंकर ! और बहुतोंके (गौरीनाथकी ओर इशारा करके) हाथ समुद्रके जलमें धोनेसे समुद्रका जल लाल हो जाता है, लेकिन हाथका दाग नहीं जाता।—साधुभाषामें कह रहा हूँ, क्यों न ? शेक्सपियरने कहा है— The multitudinous seas incarnadine, (विराट् आरक्त

समुद्र) खूब कहा है—लेकिन बहुत ही जटिल संस्कृतमें कहा है। लेकिन मेरी यह उक्ति खालिस हिन्दी है। और—

गौरी०—मगर जान रक्खो, राहमें बैठनेमें अब अधिक विलम्ब भी नहीं है। मैं—

प्रेम०—राहमें बहुत लोग बैठते हैं। पर अन्तर इतना है कि जो दान देकर इस दशाको पहुँचता है, वह राहमें बैठता जरूर है; लेकिन सिंहासनके ऊपर बैठता है—राह चलनेवाले लोग उसे देखकर, उसके आगे भक्तिभावसे घुटने टेककर उसकी पूजा करते हैं। बहुत लोग दान न करके भी इस दशाको पहुँचते हैं। वे जब राहमें बैठते हैं, तब राह-चलते सियार-कुत्ते भी उनको लात मारकर चले जाते हैं।

गौरी०—दान! दान! दान! भोलानाथने दान करके किया क्या है? मैंने ऋण देकर जमींदारी खरीदी है, और वे दान करके जमींदारी खो रहे हैं—यही बात है न!

प्रेम०—उन्होंने जमींदारी बेशक नहीं खरीदी; लेकिन उन्होंने भी खरीदी की है।

गौरी०—क्या!

प्रेम०—कीर्ति।

गौरी०—कीर्ति क्या है? कुछ नहीं। फ़ः! हवा है। फुससे उड़ जाती है। कुछ नहीं होता। मगर जमीन एक कड़ी चीज है—जोतने बोनेसे उसमें फसल पैदा होती है।

काली०—यह तो गौरीनाथ तुमने खूब कहा भाई! 'उत्प्रेक्षा' के साथ कहा है। पोपने कहा है कि Solid pudding against empty praise (कोरी प्रशंसाके बदले तर हलवा) लेकिन कीर्ति

फ़: ! हवा है । फुससे उड़ जाती है—खूब ! गौरीनाथ ! shake hands (हाथ मिलाना)

प्रेम०—आप जानते हैं, वे सबेरे सारी आमदनी दान-पुण्यमें खर्च किये बिना पानी नहीं पीते ।

गौरी०—डाहके मारे ।

प्रेम०—डाह तो आप करते हैं । भोलानाथजीकी बड़ाई सुनते ही आपका चेहरा क्यों मलीन हो जाता है ?

काली०—But envy whithers at another's joy and hates the excellence it cannot reach. (द्वेष दूसरेकी प्रसन्नतासे म्लान होता है और अपनी पहुँचके परेकी श्रेष्ठतासे घृणा करता है ।)

प्रेम०—भोलानाथजी तो आपसे डाह नहीं करते ।

गौरी०—अजी मन-ही-मन करते हैं, केवल मुँहसे बुराई नहीं करते । बूढ़ा बड़ा पाजी है ।

प्रेम०—खबरदार, भोलानाथजीको पाजी न कहना !—मैं इसे सहन नहीं करूँगा ।

गौरी०—क्या ? मारोगे क्या ?

प्रेम०—जरूरत पड़े, तो इसमें भी कम नहीं हूँ ।—जाने रहना ।

गौरी०—हिश् ! तुम्हारी मजाल नहीं है ।

प्रेम०—तो देखोगे ! (आस्तीन चढ़ाता है ।)

काली०—अरे यह करते क्या हो ? यह बिलकुल दार्शनिक अवस्था नहीं है । तर्क करके मीमांसा करो । इससे आगे मत बढ़ो ।

प्रेम०—ना, तुमसे हाथापाई करना मेरे लिए लज्जाकी बात है । तुम भी क्या आदमी हो ?

काली०—आहा—God made him (इश्वरने अपने हाथसे बनाया है।)

[शिवदयालु और कामताप्रसादका प्रवेश]

प्रेम०—अब यह पूरा पूरा शैतानका दरबार हो उठा।

(क्रोधपूर्वक प्रस्थान)

शिव०—मामला क्या है ?

गौरी०—यह बदमाश मेरे घरपर मुझसे झगड़ा करने आया है.... कहता है, मारूँगा।—आ न (आस्तीन चढ़ाते हुए), आ न, पाजी।

काली०—Why गौरी this is worse than Quixotic (गौरी, तुम तो डान कुइकजोटसे भी बढ़ गये) Don Quixote गया था युद्ध करने Wind Mill (पवन-चक्की) के साथ। लेकिन तुम युद्ध करने जा रहे हो—Wind (पवन) के साथ।

गौरी०—अच्छा, और किसी दिन देख लूँगा (बैठ जाता है।)

काली०—यही अच्छा है—Said like a wise man (समझदारीकी बात कही।)

गौरी०—(शिवदयालुसे) अच्छा। उधरकी खबर क्या है ?

शिवदयालु—नीलामपर चढ़ गया है। २५ नं० लाट कमलापुर। २७ जुलाईकी तारीख पड़ी है।

गौरी०—यह मालूम है ! नीलामी इश्तिहार जारी न होगा ?

शिव०—नहीं जारी होगा। इसका भी इन्तजाम कर लिया है।

गौरी०—वाह वाह, क्या बात है ! अच्छा तो तुम इस समय जाओ। मैं जरा एटर्नीके पास जाऊँगा।

शिव०—क्यों, मैं ही चला जाता हूँ।—बतलाओ न, क्या करना होगा।

गौरी०—इस समय तुम्हें और कोई काम नहीं है ?

शिव०—मुझे और काम ! मेरा यही तो काम है।

गौरी०—अच्छा तो यह कागज ले जाओ। दस्तखत किये देता हूँ। और सब वह जानते हैं। लो। (बक्स खोलकर कागज निकालना और शिवदयालुके हाथमें देना।)

(शिवदयालुका प्रस्थान)

काली०—For Satan finds some mischief still for idle hands to do. (शैतान सदा कुछ न कुछ शैतानी आलसियोंके लिए ढूँढ़ ही निकालता है।)

गौरी०—(कामताप्रसादसे) इधरका क्या हाल है ?

कामता०—सब ठीक है।

गौरी०—कितना माँगता है ?

कामता०—बहुत नहीं; (कानमें) बहुत ही सुन्दरी है।

गौरी०—रूप रंग अच्छा है ?

कामता०—ओः ! एक दम अच्छा, बहुत ही अच्छा !

गौरी०—तो ठीक कर डालो।

कामता०—अच्छा तो मैं जाता हूँ। एक जरूरी काम हैं।

(प्रस्थान)

काली०—गौरीनाथ उधर न झुको।—घरमें बैठकर ब्रांडी पियो—बस ! लेकिन औरत—तुम जानते नहीं हो—

What dire offence from amorous causes springs,
What mighty contests rise from trivial things.

(कामुकताके कारण बड़े बड़े दारुण उत्पात हो जाते हैं। छोटी बातोंके चलते चलते बड़े बड़े युद्ध ठन जाते हैं।)

गौरी०—मैं सिरके बालकी नोकसे लेकर पैरोंकी उँगलीके नाखून तक बदमाश हूँ। ऐसा कौनसा काम है, जो मैं नहीं कर सकता।—चोरी? जहाँतक संभव है, यह चोरी ही है! इश्तिहार रद कराके यह जमींदारीकी चोरी करना है।—और यह सभी करते रहते हैं। दुनियामें दौलत और जमीन जमा करनेके लिए इसकी जरूरत पड़ती ही है। महफिलमें खड़े होकर घूँघट नहीं काढ़ा जाता!—और इधर? मनोरञ्जन भी तो चाहिए।—इससे भी बढ़कर बहुतसे खराब काम किये हैं। एक दिन—

[हीराका प्रवेश]

हीरा—यही तो है!

गौरी०—(चौंककर) कौन हो तुम?

हीरा—कौन हूँ मैं!—आँखें खोलकर देखो, पहचान पाते हो कि नहीं। (लैंप उठाकर उसकी रोशनी अपने मुँहपर डालती है।)

गौरी०—(विस्मयके साथ) हीरा!

हीरा—पहिचान लिया?

गौरी०—तुम यहाँ कहाँ?

हीरा०—पागलखानेसे आई हूँ!

गौरी०—पागलखानेसे?

हीरा—हाँ पागलखानेसे। वहाँ क्यों गई थी, सुनोगे?

गौरी०—क्यों गई थीं?

हीरा—तुम्हारी ही असीम कृपासे।—सुनोगे?

गौरी०—क्या?

हीरा—अपनी दयाकी कहानी! उसके हरएक अक्षरसे टपटप करके खून टपक रहा है। उसकी हरएक लाइन एक एक शैतानका जीवन-चरित है। अच्छा सुनो। तुम जब उस कठोर जाड़ेमें वस्त्र और

अन्नके बिना मुझे एक फटे कंबलके साथ उस टूटे खंडहरमें छोड़ आये थे, तभी मैं पागल हो जाती; केवल अपने नन्हेंसे बच्चेका चाँदसा मुखड़ा देखकर ही मैं होशमें बनी रही। लेकिन उस गाढ़े अन्धकारमें मेरे जीवनका सहारा वह दीपक भी बुझ गया। मेरा बच्चा उस माघ-पूसके कड़े जाड़ेमें भूखके मारे तड़प-तड़पकर मर गया। मैं अपने शरीरकी गर्मीसे घेरकर उसकी रक्षा करती थी—कलेजा निचोड़ निचोड़कर बूँद-बूँद दूध निकालकर उसे पिलाती थी। लेकिन जिसने खुद तीन दिनसे कुछ खाया पिया नहीं, उसके शरीरमें गर्मी कहाँ? उसके कलेजेमें दूध कहाँ? मेरा बच्चा सर्दीसे अकड़कर और भूखसे तड़पकर, मर गया। (स्वर काँपने लगता है।)

गौरी०—इसमें मेरा क्या!

हीरा—तुम्हारा क्या!—हाँ—सो तो ठीक ही है, इसमें तुम्हारा क्या!—वह तो तुम्हारी सन्तान न थी। वह मेरी आँखोंका तारा, मेरे आँचलका रत्न, मेरी गोदीका लाल, मेरा सर्वस्व था। (रोती है)

गौरी०—तो अब रोनेसे क्या होगा!

हीरा—कुछ नहीं होगा। लोग यह आशा करके नहीं रोते कि रोनेसे कुछ होगा, रुलाई आती है, इससे रोते हैं। मैं रो-रोकर तुम्हारा हृदय गलाने नहीं आई हूँ। तुम्हारे पास आश्रयकी भीख माँगने नहीं आई हूँ। एक दिन था जब तुम यदि एक शीशी लवेंडरकी खरीदकर ला देते थे, तो उसे मैं सिर-आँखोंसे लगा, लेती थी। लेकिन आज तुम अगर कुबेरकी संपदा भी लाकर मेरे पैरोंपर रख दो, तो मैं उसे लात मारकर चली जाऊँगी।

गौरी०—तो फिर यहाँ क्यों आई हो?

हीरा—मरनेसे पहले तुमको तुम्हारी कीर्ति सुनाने।—सुनो, जब मैंने देखा—मेरा बच्चा न रोता है, न हिलता है, न आँखें खोलता है—तब मैं चिल्लाकर रो उठी—इतने जोरसे चिल्लाई कि शायद पृथ्वीपर आजतक कोई भी उतने जोरसे न चिल्लाया होगा। लेकिन किसीने भी मेरा चिल्लाना नहीं सुन पाया। जान पड़ता है, शीतकालके कोहरेने राहमें चिल्लाहटका गला दबा दिया। उसके बाद वही बच्चेकी लाश गोदमें लिये मैं इधर उधर दौड़ने लगी। एक जगह ठोकर खाकर गिर पड़ी। जब होश आया, तब मैंने अपनेको पुलिसके हाथमें पाया। मेरे बच्चेकी लाश मेरी गोदमें नहीं थी। इसके बाद पुलिसके सिपाही मुझे अदालतमें ले गये। डाक्टरने मेरी जाँच की। मुझसे न जाने क्या क्या सवाल किये—कुछ समझमें नहीं आया। मैंने क्या जवाब दिये, सो भी कुछ याद नहीं है। उसके बाद हाकिमने मुझे एक बड़े भारी मकानमें भेज दिया। पीछे मालूम पड़ा कि वह पागलखाना है। दस वर्ष तक वहीं रही। परसों वहाँसे निकलकर आई हूँ।—यही तुम्हारी कीर्ति है।

गौरी०—इसमें मेरा कोई दोष नहीं है।

हीरा—ना, तुम्हारा दोष नहीं है। सब दोष इसी बदनसीब स्त्री-जातिका है। सब दोष मेरा है। दोष मेरा है, जो मैंने तुमपर विश्वास किया। दोष मेरा है, जो मैंने धर्मको तिलांजलि दे दी। दोष मेरा है, जो तुम्हें बेखबर सोते पाकर भी गला दबाकर तुम्हारे इस पापी जीवनका अन्त नहीं कर डा[illegible]।

गौरी०—क्या बकती है पागल औरत!

हीरा—(हँसकर) ओः! अभीसे सफाई तैयार कर रहे हो!—मैं पागलखानेसे निकलकर जरूर आई हूँ, लेकिन अब पागल नहीं हूँ।

डाक्टरने परीक्षा करके कह दिया है कि अब मैं पागल नहीं हूँ । मुझे वहाँके अफसरोंने छोड़ दिया है । पागलका प्रलाप बताकर ऐसे एक भयानक सत्यको, ऐसे एक निष्ठुर परित्यागको, ऐसी और इतनी बड़ी पिशाच-लीलाको उड़ा देना चाहते हो ! आग कहीं फूसके दबाये दबती है !

गौरी०—(नर्मीके साथ) हीरा !—

हीरा—डरो नहीं, इस बातको मैं संसारमें प्रकट नहीं करूँगी । अदालतमें विचार होनेसे तुमको केवल जेल होगी !—बस, सब खतम हो जायगा । तब अपने कलंककी बात प्रकट करनेसे क्या लाभ ! मैं अगर रास्तेमें खड़े होकर चिल्लाकर कहूँ कि "तुमने एक हृदयको तोड़ डाला है, एक जीवनको मरुभूमिके समान उजाड़ बना दिया है, एक कुल-कामिनीको डुबा दिया है," तो यह संसार उस बातको हँसकर उड़ा देगा । कहेगा, "तुमने आप अपना सर्वनाश किया है; उसका क्या दोष । शिकारीका रोजगार ही हत्या करना है । पुरुषका स्वभाव ही स्त्रीका सर्वनाश करना है । तुमने क्यों अपनेको फँसा दिया ! "—ना, तुमको कोई दोष न देगा ।—मेरे अगर सौ जबानें होतीं, और हरएक जबान डँकेकी चोट उस बातको प्रकट कर सकती, तो भी संसार पत्थरकी तरह निश्चल स्थिर होकर उसे सुना करता । मकान गिरकर चूरचूर न हो जाते, वृक्ष जल न उठते । सब पहलेकी तरह जैसेके तैसे खड़े रहते ।—लेकिन अपने भयानक भविष्यका खयाल करके काँप उठो, काँप उठो, काँप उठो ।

गौरी०—चिल्लाओ नहीं ।

हीरा—चिल्लाऊँ नहीं !—अगर हो सकता, तो इतने जोरसे चिल्लाती कि उससे आकाश चौ-चीर होकर फट जाता । उस चिल्ला-

हटमें जगत्‌के सारे आर्त्तनाद एक साथ चिल्ला पड़ते। उससे ईश्वरका आसन हिल उठता। लेकिन—हाय भगवान्‌!—तुमने मनुष्यको इच्छा इतनी प्रबल और शक्ति इतनी दुर्बल क्यों दी!

(मत्थेमें हाथ दे मारती है और पागलोंकी तरह जल्दीसे भाग जाती है।)

चौथा दृश्य

स्थान—मुन्नीका घर

समय—तीसरा पहर

[मुन्नी गाती है]

सोहनी। गजल।

सूर्य होते अस्त सन्ध्याके समय—आहें भरूँ।
देरतक मैं दूरतक आकाशको ताका करूँ॥
जब कि सोऊँ रातको रोऊँ पड़ी एकान्तमें।
तर करूँ तकिया, कहो कैसे अहो धीरज धरूँ॥
वह उषा आकर निरादर कर पलट जाती है फिर।
वायु विष-वर्षा करे विस्तरपै मैं तड़पा करूँ॥
यह सुबहका चहचहाना पक्षियोंका, कानमें—
शूलसा लगता, विवश हूं, यत्न इसका क्या करूँ॥
मैं न जानूँ, कौन अपना है, किसे अपना कहूँ।
सब यहाँ आवें, हँसें, चल दें; कहो किसपर मरूँ।
और लोगोंके लिए ही है हमारी जिन्दगी।
औरका जीवन बिताती हूँ सभीका दम भरूँ॥
मैं न जाने किस लिए जीती हूँ, जीवन व्यर्थ है।
है न कुछ उद्देश्य इसका, सबका मुँह ताका करूँ॥
आँखसे आँसू न निकलें, उनको पी जाती हूँ मैं।
सब तरह अपमान सहती हूँ मिटाकर आबरू॥

[उस्तादजीका प्रवेश]

मुन्नी—आइए उस्तादजी !—मेरी तबीयत आज ठीक नहीं है।

उस्ताद—ठीक नहीं है !—क्या हुआ बेटी ?

मुन्नी—तबीयत अच्छी नहीं है, और कुछ नहीं। अभी मैं एक गीतकी कसरत कर रही थी।

उस्ताद—बहुत अच्छी बात है—लेकिन—

मुन्नी—(हँसकर) उस्तादजी, आपकी हर बातमें एक ' लेकिन ' जरूर ही होना चाहिए।

उस्ताद—ओहो ! समझ गई। लेकिन वह मेरी आदत हो गई है।—लेकिन—(मुन्नी जोरसे हँसती है)

उस्ताद—कैसी मीठी आवाज है ! तुम्हारी हँसी ही गीतसे बढ़कर सुरीली और रसीली है—अब और क्या गीत गाओगी बेटी ?

मुन्नी—यह हँसी सुनकर ही क्या कोई रुपया दे देगा उस्तादजी ?

उस्ताद—नहीं देगा तो क्या हर्ज है ?—

मुन्नी—खाना-पीना कैसे चलेगा ?

उस्ताद—यह बेशक मुश्किलकी बात है। लेकिन गीत बेचनेकी चीज नहीं है। यदि दिलसे गाओगी, तो जो सुनेगा वही मशगूल हो जायगा। गुल क्या बुलबुलके लिए रंग-बेरंग हँसी हँसता है बेटी ?

मुन्नी—बहुत खूब !—अच्छा तो आज सलाम करती हूँ उस्तादजी !

उस्ताद—सलाम ! क्या कल आऊँ ?

मुन्नी—जी हाँ, कल जरूर आइए। आदाब !

उस्ताद—बंदगी। (प्रस्थान)

मुन्नी—तुमने सच कहा उस्तादजी, यह गाना बेचकर खाना होगा ! और भी एक बात, मुझे दुःख होगा यह सोचकर, तुमने

नहीं कही। लेकिन वह बात इसी बातके भीतरसे व्यक्त होती है।—सबसे बढ़कर दुःख यह है कि इस रूपको बेचकर पेट पालना होता है। स्त्रीका रूप—जो ईश्वरका श्रेष्ठ दान है; स्त्रीका रूप—जो इन्द्र-धनुषके समान उस अनादि उज्ज्वल रूपको रंजित करता है; स्त्रीका रूप—जिसकी महिमासे पृथ्वी गर्वके साथ सिर उठाकर स्वर्गको द्वन्द्व-युद्धके लिए ललकारती है, मानों कहती है—दिखाओ, इसके समान तुम्हारे पास क्या है; स्त्रीका रूप—जिसके चरणोंमें सारे संसारका सौन्दर्य आकर सिर झुकाता है, जिसकी ओर देखकर शब्द संगीतमें बज उठता है, भाषा छन्दोंमें गा उठती है, ज्ञान पागल हो उठता है, भक्ति घुटने टेककर प्रणाम करती है, जिस सौन्दर्यके कोमल हाथके स्पर्शसे पशु भी वश हो जाता है; वही स्त्रीका रूप बेचकर खाना जुटाना पड़ता है ? ओः ! (टहलते टहलते सहसा बड़े आईनेमें अपना प्रतिबिंब देखकर) वह कौन !—नहीं, मेरी ही परछाहीं है !—(देखना) महिमामय ईश्वर, इस रूपको पुरुष गंदे भावसे छू सकता है ! इस रूपको देखकर पुरुष विस्मय और भक्तिके साथ इसके चरणोंके नीचे आकर लोट न जायगा ? तब भी इस रूपको लालसाके ग्राससे बचानेके लिए अस्त्र लेकर निकलना पड़ता है !—आश्चर्यकी बात है !

[दासीका प्रवेश]

मुन्नी—(चौंककर) कौन !

दासी—लाला गोपालदास आये हैं।

मुन्नी—दुतकार दे ! कुत्ते झपटा दे !

दासी—दुतकार दूँ ?

मुन्नी—हाँ—निकालो ! निकालो !

दासी—यह क्या !—क्या कहती हो ! यह क्या कर रही हो !

मुन्नी—बस बस, जा, चले जानेके लिए कह दे। कह दे, मैं उनसे मुलाकात नहीं करूँगी।

दासी—अगर वे पूछें—'क्यों?'

मुन्नी—कुछ जवाब न देना।—अच्छा, जवाब दे देना, कह देना कि, मैं उनसे नफरत करती हूँ।— (तेजीसे प्रस्थान)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—लक्ष्मीका घर

समय—रात

[लक्ष्मी और दीनानाथ खड़े हुए बातचीत कर रहे हैं।]

लक्ष्मी—मुझे अब जीनेकी साध नहीं रही—लड़केकी बहू आ गई है। बस, अब भगवान् मौत दे दे। ईश्वर! पार लगाओ किसी तरह!

दीना०—इतनी जल्दी क्या है।—और भी थोड़ा देखे जाओ।

लक्ष्मी—अब और देखना नहीं चाहती भैया!—कौन जाने, इसके बाद क्या हो!—दिन रहते ही खिसक जाना अच्छा है।

दीना०—वह देखो, भगवानदास आ रहा है।

[भगवानदासका प्रवेश]

भग०—अम्मा!

लक्ष्मी—क्यों बेटा! (दीनानाथकी ओर देखना)

दीना०—मेरी ओर क्या देख रही हो!—ओः! समझा। मैं जाता हूँ। (प्रस्थान)

लक्ष्मी—(भगवानदासके कन्धेपर हाथ रखकर) बेटा, तुम्हारा मुँह कुछ उदास देख पड़ता है। (आग्रहके साथ) क्या हुआ है बेटा?

भग०—अम्मा, तुमने बहूसे बक-झक की है?

लक्ष्मी—बहूने तुमसे कुछ कहा है?

भग०—नहीं—तुम बक रही थीं; मैंने अपने कानसे

लक्ष्मी—अपने कानसे ही जब सुना है—तब क्यों कि मैंने बक-झक की है या नहीं?—हाँ बेटा, मैंने बहूको है।—गिरिस्तीके काम-काज सिखानेमें बीच-बीचमें कुछ ध बकना ही पड़ता है।

भग०—उसे काम-काज सीखनेकी जरूरत ही क्या है

लक्ष्मी—बापरे! काम-काज सीखे बिना कहीं काम च है!—मैं तो सदा बनी ही नहीं रहूँगी। एक दिन गिरि काम उसे भी तो देखने पड़ेंगे।

भग०—जब जरूरत होगी, देखा जायगा।—अभी क्या

लक्ष्मी—बहू-बेटियोंको घर-गिरिस्तीके काम-काज सीख होता है—उसमें अभी और तभी क्या!—इसके सिवा अ हुई हूँ—मुझसे अकेले सब काम होता भी नहीं।

भग०—अब तक तो होता था!—अम्मा, मैं बहू लाया नहीं। वह कमजोर है, उससे काम-काज न हो सकेगा।

लक्ष्मी—(कुछ देरतक विस्मयसे पुत्रकी ओर ताककर धी अच्छा—सो—अच्छा, जबतक जियूँगी, मैं ही करूँगी।— बहूको गुड़ियाकी तरह सँवार-सिंगारकर आलेमें बिठा दे।

भग०—ना, बहू अब यहाँ नहीं रह सकेगी। उसकी खराब हो रही है। तुम उसकी बिलकुल चिन्ता नहीं रखतीं सिवा!—

लक्ष्मी—इसके सिवा—रुक क्यों गये!—कह डालो बे

भग०—सच कहनेमें संकोच ही क्या !—वह बड़े घरकी लड़की है—किसीकी लाल आँख उसने कभी देखी नहीं । तुम जो कर सकतीं हो, सो उससे नहीं हो सकता ।

लक्ष्मी—ओः !—अच्छा !—मैं अब बहूसे एक बात भी नहीं कहूँगी ।

भग०—नहीं—और वह उसके—नहीं—वह अपने दादाके पास चली जायगी ।

लक्ष्मी—ठीक है ! तेरे ददियाससुर लखनऊमें हैं, और तेरा कालिज भी लखनऊमें है—इसीसे !—क्यों ?

भग०—नहीं अम्मा, इसलिए नहीं !—वह यहाँ देहातमें नहीं रह सकेगी !—इस टूटे फूटे झोपड़ेमें उससे न रहा जायगा । खासकर तुम उसका कुछ भी खयाल नहीं करतीं । वह अपने घर चली जायगी ।

लक्ष्मी—और यह उसके गैरोंका घर है !—अच्छी बात है !—पर वह क्यों जायगी !—मैं ही जाती हूँ ! मैं काशीवास करूँगी । अबसे पहले ही मुझे सब छोड़कर काशीवास करना चाहिए था । यदि ऐसा किया होता, तो तेरा वह पहला जैसा मातृ-स्नेह हृदयमें रखकर मर सकती । मैं माता हूँ—आज एक पराई लड़की आकर मुझे मेरी जगहसे हटाये देती है—यह भी देखना पड़ा ! ईश्वर ! मैं बुढ़ापेमें भी घर-गिरिस्तीमें फँसी हुई हूँ । सब भूल चुकी हूँ, तो भी लड़केका खयाल जीसे नहीं हटा सकी । जिस समय सब कुछ तुम्हारे चरणोंमें विसर्जन कर देना चाहिए था, उस समय मैं संसारमें रची-पची रही । उसकी सजा तुमने खूब दी भगवान् !—सिर झुकाकर उसे स्वीकार करती हूँ—बस अब और नहीं । भगवानदास, तू मेरी काशी-यात्राका प्रबन्ध कर दे ।

भग०—अच्छी बात है ! कल ही कर दूँगा !

लक्ष्मी—अपनी स्त्रीको लेकर तू सुखसे घर-गिरिस्ती कर। मैं दूरसे सुनकर ही सुखी हो लूँगी। तू सुखसे रह बेटा, मुझे और कुछ न चाहिए। लेकिन यह बात सदा मेरी छातीमें काँटेकी तरह खटकती रहेगी कि तूने स्त्रीको मासे भी बढ़कर समझा।—न जाने कहाँकी वेश्या बहू—

भग०—बस, मुँह सँभालकर बात करो। वह वेश्या है या तुम?

[दीनानाथका प्रवेश]

दीना०—चुप रह बे-अदब ! माको जवाब देता है ! अपना सर्वनाश करने बैठा है अभागे !—निकल घरसे, बाहर हो जा !

भग०—यह किसका घर है ?

दीना०—बुआ (लक्ष्मी) का घर है।—अभी तेरी मा मरी नहीं, जाने रहना। जा, तू अपनी माका त्याज्य पुत्र है। माको जवाब देता है !—बुआ, तुम्हारा यह त्याज्य पुत्र है। इसे घरसे बाहर निकाल दो !—बुआ !

लक्ष्मी—नहीं नहीं—वह अभी बच्चा है—अभी बच्चा है! बच्चेसे क्या मैं ऐसा कह सकती हूँ ! लड़केसे क्या मैं यह कह सकती हूँ कि 'निकल जा घरसे'! यह कहीं हो सकता है दीनानाथ ! मैं मा हूँ, मा !—बेटा, मैं तेरी बहूसे अब एक भी बात नहीं कहूँगी। वह मेरे घरकी राजरानी होकर रहे। मैं उसकी ताक रक्खूँगी, उसका दासीपना करूँगी। केवल तू मुझे उसी तरह प्यार कर, जिसतरह एक समय करता था। मेरे गलेसे लिपटकर उसी तरह दुलारके साथ हँसकर मुझे 'अम्मा' कहकर पुकार, जिस तरह पहले पुकारता था। बूढ़ी हो गई हूँ। अब और कै दिनकी जिन्दगी है। उसके बाद तू

मुझे एकदम भूल जाना।—मैं भी फिर तुझे देखने न आऊँगी। खड़ाँ जितने दिन जीती हूँ उतने दिन अपनी माको उसी दृष्टिसे देख, मेरे बच्चे ! (काँपते काँपते भगवानदासके पैरोंपर गिर पड़ती है)

[सरस्वतीका प्रवेश]

सरस्व०—यह क्या करती हो अम्मा, यह क्या करती हो !—लड़केके पैरोंपर मा पड़ी हुई है !—उठो अम्मा, पृथ्वी उलट जायगी, सूर्य आकाशसे गिर पड़ेगा, आकाश जम जायगा, समुद्र सूख जायगा, ब्रह्माण्ड काँप उठेगा। (भगवानदाससे) यह क्या! चुपके सन्नाटेमें आकर मेरे मुँहकी ओर क्या ताक रहे हो !—उधर देखो। देखो, तुम्हारे पैरोंपर माता पड़ी हुई है ! (लक्ष्मीसे) उठो अम्मा। (उठाती है) नासमझ लड़केका अपराध क्षमा कर दो। (भगवानदाससे) फिर भी चुपचाप खड़े हो ! हाथ जोड़ो, पैर पकड़ो—अपनी आँखोंके आँसुओंसे माताके पैर धो दो। किया क्या तुमने !

भग०—अम्मा, क्षमा करो। (पैर पकड़ता है)

सर०—अम्मा, अपने लड़केको गोदमें उठा लो। और—मैं तुम्हारी दासी हूँ। गिरिस्तीके काम-काज करना मायकेमें नहीं सीखा है, सो तुम सिखा लो।—मेरे अपराध क्षमा करो। (पैरोंपर पड़ती है।)

लक्ष्मी—उठो बेटी, अगर क्रोधमें मैंने तुम्हें कुछ कहा हो, तो उसे भूल जाओ। बूढ़ी हो गई हूँ। बुद्धि ठिकाने नहीं है। मेरी बेटी !

(लक्ष्मी भगवानदास और सरस्वती दोनोंको छातीसे लगाती है।)

दीना०—(आँसू पोंछते पोंछते) हायरे माताकी ममता !- ईश्वरने इस जातिको काहेसे बनाया है ! इस मनुष्य-जीवनकी तपी हुई रेतीके बीच यह पुत्र-स्नेहका समुद्र उमड़ रहा है।—मनुष्यो, इसमें स्नान करो, इसे पान करो और पवित्र होओ।

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—लक्ष्मीका घर। समय—संध्याकाल

[लक्ष्मी और दीनानाथ]

लक्ष्मी—मेरा भगवानदास जरूर आवेगा। बड़े दिनकी छुट्टियोंमें, सालभरके बाद, वह मेरे पास न आवेगा? इन छुट्टियोंमें वह सदा ही आता रहा है। आज मेरी तबीयत खराब होनेकी खबर पाकर भी वह न आवेगा, यह भी कहीं हो सकता है दीनानाथ!

दीना०—कभी कभी बहुत दिनोंका अभ्यास एक दिनमें छूट जाता है बुआ!

लक्ष्मी—ना ना, ऐसा कहीं हो सकता है! ऐसा कहीं हो सकता है!

दीना०—खासकर ऐसा खराब अभ्यास!—माताकी भक्ति! मनुष्य नशेबाजीको नहीं छोड़ सकता, कुसंगको नहीं छोड़ सकता, लेकिन माको एक दिनमें छोड़ सकता है।

लक्ष्मी—छोड़ सकता है? मनुष्य भी छोड़ सकता है? हाँ, पशु अवश्य छोड़ सकता है।

दीना०—बहुतसे ऐसे मनुष्य हैं जिनमें और पशुओंमें यही अन्तर है कि पशुके चार पैर और पूँछ होती है, और मनुष्यके दो ही पैर होते हैं और पूँछ नहीं होती।

लक्ष्मी—तुमने कहा था, उसने चिट्ठीमें लिखा है कि पहली तारीखको आ जायगा। तभीसे मैं दिन गिन रही हूँ। आज पहली तारीख है। वह जरूर आवेगा।—उसने चिट्ठी भी तो लिखी है।

दीना०—चिट्ठी तो लिखी है; लेकिन अगर तुम उस चिट्ठीका ढंग देखती बुआ! पेन्सिलसे—चलिबिलौआ—पढ़ना कठिन है! मानों घोड़ेपर चढ़े-चढ़े लिखी है—और वह घोड़ा उस समय सरपट भाग रहा था। उसने मेरी चिट्ठीका जवाब भर दे दिया है, यही मेरे लिए—तुम्हारे लिए—परम सौभाग्यकी बात है।

लक्ष्मी—ना। मेरा भगवान वैसा लड़का नहीं है। भगवान आवेगा, और जरूर आवेगा। मेरा जी कह रहा है, आवेगा।

दीना०—माताका जी बहुतसी झूठी बातें भी कहता है बुआ!

लक्ष्मी—(सहसा आग्रहके साथ) वह शायद आ रहा है।

दीना०—कहाँ?

लक्ष्मी—वह गाड़ीकी घरघराहट नहीं सुन पड़ती?

दीना०—सुन पड़ती है।—संसारमें शायद भगवानदास ही अकेले गाड़ीपर चढ़ता है!

लक्ष्मी—वह देखो, देखो—वह गाड़ी—

दीना०—गाड़ी जरूर है, इसमें सन्देह नहीं!

लक्ष्मी—चुप—नहीं—वह नहीं है, गाड़ी चली गई—

दीना०—हायरे माताकी ममता!

लक्ष्मी—अबकी बड़े दिनकी छुट्टी हुई है?

दीना०—हाँ बुआ, सिर्फ हुई ही नहीं, समाप्त भी हो आई है।

लक्ष्मी—तो फिर—बच्चेकी तबीयत तो नहीं खराब हो गई?

दीना०—हायरे माताका हृदय !

लक्ष्मी—मुझे ले चलो दीनानाथ, मैं उसके पास जाऊँगी।

दीना०—कहाँ जाओगी ?—समधियाने ? जाओ, देखोगी कि तुम्हारा लड़का चन्द्रमाका अमृत पी रहा है, फूलोंकी हवामें नहा रहा है। तुम जाकर उसका सुखका सपना मिटा दोगी। तुमको भी कष्ट पहुँचेगा और उसे भी व्यथा होगी।

लक्ष्मी—यह भी कहीं हो सकता है कि छुट्टियोंमें वह घर न आकर अपनी सुसराल गया हो ! यह क्या हो सकता है !

दीना०—जाओ, जाकर देखो !

लक्ष्मी—तुम उसे नहीं जानते। मैं उसे जानती हूँ। मैंने उसे नौ महीने अपने पेटमें रक्खा है। वह वैसा लड़का नहीं है।

दीना०—ईश्वरने किस सामग्रीसे यह माका हृदय बनाया है ! बुआ, चबूतरेपर बैठकर राह देखनेसे ही क्या वह आ जायगा ? घरके भीतर जाओ। ठण्ड पड़ रही है। तुम्हें बुखार चढ़ आया है। आज एकादशीका व्रत भी है। ठण्डमेंसे उठ जाओ।

लक्ष्मी—(उठकर) जाती हूँ भैया।

दीना०—अच्छा तो मैं जाता हूँ बुआ, कल सबेरे फिर आऊँगा। अब ठंडकमें न बैठना, शाम हो आई। (प्रस्थान)

लक्ष्मी—मेरे जीवनकी भी शाम हो आई है !—भगवान् !—तो क्या सचमुच भगवान नहीं आवेगा ! सचमुच ही क्या—यह क्या, गला क्यों रुँधा जाता है ! आँखोंके आगे अँधेरा क्यों छाया जाता है !—नहीं, वह आवेगा !—वह आवेगा ! यह क्या हो सकता है ! अभी लड़का ही तो है !—नहीं, मैं रातभर इसी चबूतरेपर बैठकर

उसकी राह देखूँगी। वह आवेगा ।—और अगर न आवे—वही शायद 'मा' कहकर पुकार रहा है। मैं आती हूँ, मेरे बच्चे (दौड़कर जाना चाहती है)

[बूढ़े भिक्षुकका प्रवेश]

भिक्षुक—आज रातको ठहरनेके लिए जरासी जगह दो मा !

लक्ष्मी—ओः !—(दोनों हाथसे मुँह ढँकना) आओ बेटा।

दूसरा दृश्य

स्थान—गौरीनाथकी बाहरी बैठक

समय—सबेरा

[गौरीनाथ और शिवदयालु]

गौरी०—नीलाम आज ही है ?

शिव०—हाँ, आज ही है।

गौरी०—आः ! पाँच हजार रुपये तुमको कहीं नहीं मिले ? इस मौकेपर मेरे हाथमें भी नगद रुपये नहीं हैं। तुम और एक दफा जाओ। न पाओगे, तो फिर बैंकसे उधार लेना होगा ! जाओ—

शिव०—अच्छा जाता हूँ ! एक काम करूँ !

गौरी०—क्या ?

शिव०—बुरा क्या है !—मियाँकी जूती और मियाँका ही सिर हो, तो कैसा ? (हँसना और प्रस्थान)

गौरी०—क्या चाल सोची है !—इतना हँसता क्यों है !—लो, वे प्रेमशंकर और कालीचरण दोनों आ रहे हैं।

[प्रेमशंकर और कालीचरणका प्रवेश]

गौरी०—क्यों प्रेमशंकर, आज अचानक इस गरीबकी झोपड़ीमें पधारना कैसे हुआ ?

प्रेम०—कालीचरणजीके साथ टहलते टहलते और बातें करते करते भूलकर चला आया। जाता हूँ, लो। (जाना चाहता है)

गौरी०—अरे जाते क्यों हो! बैठो।—इस समय तुम्हारे भोलानाथकी क्या हालत है! इस समय भी क्या दुनिया भरके लोग उनका गुण-गान करते हैं?

प्रेम०—करेंगे क्यों नहीं? अवश्य करते हैं।

गौरी०—इस समय भी क्या वे दोनों हाथोंसे जी-खोलकर अपनी दौलत गरीब-दुखियोंको लुटाते हैं?

प्रेम०—हाँ, लुटाते हैं।

गौरी०—अब है ही क्या, जो लुटाते हैं?

प्रेम०—यही चूनी-भूसी जो कुछ उनके पास है—

(गौरीनाथ हँसता है)

काली०—गौरीनाथ, तुम्हें खूब आनन्द आ रहा है?

गौरी०—नहीं, आनन्द नहीं। मैं भोलानाथके घमण्डको देखकर विस्मित था। आज उनका वह विषका दाँत टूट गया है, यही कह रहा था—और कुछ नहीं।

प्रेम०—गौरीनाथ, भोलानाथजीमें अनेक दोष हो सकते हैं, लेकिन घमण्ड तो मैंने कभी नहीं देखा।—मिट्टीका बना हुआ मनुष्य घमण्ड क्या कर सकता है!

गौरी०—मिट्टीका मनुष्य!—उनका तो घमण्डके मारे धरतीपर पैर ही नहीं पड़ता था।

प्रेम०—यह आप क्या कह रहे हैं गौरीनाथ! वे राहमें पैदल ही चलते हैं, यद्यपि वे चाहें तो चार घोड़ोंकी गाड़ीपर चल सकते हैं। क्यों, हँस क्यों रहे हो?

गौरी०—वे पैदल चलते हैं, लेकिन सिर उठाकर । हम लोगोंकी तरफ फिरकर देखनेकी भी उन्हें फुर्सत नहीं है। वे हम लोगोंको घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं ।

प्रेम०—वे संसारमें किसीको भी घृणाकी दृष्टिसे नहीं देखते—तुमको भी नहीं। नहीं तो जो पापी है, जिसके दोनों हाथ दीन-दुखियोंके रक्तसे रँगे हुए हैं, जो इश्तिहार दवाकर छलसे जमींदारी चुराता है—

गौरी०—कौन कहता है ?

प्रेम०— मैं कहता हूँ ।

गौरी०—तुम मुझे बदनाम करते हो ?

प्रेम०—करता हूँ और करूँगा । तुम्हारे किये जो हो, कर लो ।

गौरी०—मैं तुम्हें जेल भिजवा दूँगा !

प्रेम०—हिश् ! मानों जेल भिजवाना तुम्हारे हाथहीकी बात है !—जेल भिजवाओगे—भिजवाओ न ?

गौरी०—तुमने मेरा अपमान किया है—इन्हीं कालीचरणजीके सामने ।

प्रेम०—जरूरत पड़े, तो बाजारमें चिल्लाकर भी इसी बातको कह दूँ ! क्या यही चाहते हो ?

काली०—Tell it not in Gath, publish it not in the streets of Askelon. (भाषामें इसे न कहना । ऐसकीलनकी सड़कोंमें इसे प्रकाशित न करना ।)

गौरी०—यह बात तुम कह सकते हो कि मैं धोखा देनेवाला हूँ ?

प्रेम०—धोखा देनेवाला ! अरे तुम्हारे योग्य विशेषण तो कोषमें खोजनेसे भी नहीं मिलता । चोर, लंपट, धोखेबाज आदि अनेक शब्द कोषमें हैं, किन्तु इन सब शब्दोंको मिलाकर तुम्हारा विशेषण बनानेसे

भी तुम्हारा ठीक वर्णन नहीं हो सकता। चाहे जितना कहूँ, कुछ न कुछ बाकी ही रह जाता है। चाहे जितना नीचे तक जाऊँ, पर तुम्हारी थाह नहीं मिलती। चाहे जितना मापूँ, पर तुम्हारा अन्त नहीं मिलता। इतिहासमें मैंने तुम्हारे सदृश कोई चरित्र नहीं पढ़ा। संसारमें खोजनेसे भी तुम्हारी जोड़ी नहीं मिल सकती। तुम एक अनियम, तुम एक अपचार, तुम एक व्याधि और तुम एक कूड़े-कचरेके ढेर हो!

गौरी०—सुनते हो कालीचरण, तुमको गवाही देनी पड़ेगी। (प्रेम-शंकरसे) तुम्हें जेल न भिजवाऊँ, तो मेरा नाम गौरीनाथ नहीं।

प्रेम०—इसके लिए यदि जेल जाना हो, तो मैं तैयार हूँ। तुमको पाजी न कहनेकी अपेक्षा जेल जाना बहुत सहज है। (प्रस्थान)

काली०—गौरीनाथ, तुम हार गये।

गौरी०—मैं क्यों हारने लगा!

काली०—'हारने लगा' नहीं, हार गये। बीती हुई बात है। इसकी अपेक्षा सहज, सरल, साफ-साफ, संस्कृतमिश्रित हिन्दीकी गालियाँ मैंने पहले कभी नहीं सुनी थीं और कैसे निडर भावसे कह गया!—यही तो चाहिए—

"Who dares think one thing and another tell,
My heart detests him as the gates of hell."

(जिसमें यह साहस है कि विचारे कुछ और, और कहे कुछ और, उससे नरक-द्वारकी तरह मेरा मन घृणा करता है।)
—लेकिन यह आदमी बिलकुल ही अकुतोभयभावसे कह गया।

गौरी०—कैसीं?

काली०—गाली-गलौजका कोई अंश समझनेमें कष्ट नहीं हुआ। खूब फुर्तीके साथ कह गया। किसी जगहपर नहीं रुका। कहते कहते एक

दफा खाँसा तक नहीं। जरासा खाँसता, तो भी मैं समझ लेता कि शायद खौफ खा रहा है। बीच-बीचमें 'उत्प्रेक्षा' का भी उपयोग करता गया—जान पड़ा, गालियाँ दे रहा है, और साथ ही गालियाँ देनेके आनन्दका उपभोग भी कर रहा है! और अन्तमें जो गाली दी, उतनी जोरदार गाली तो पहले कभी किसीने किसीको भी न दी होगी।

गौरी०—कौनसी गाली?

काली०—यही कि तुमको पाजी न कहनेकी अपेक्षा जेल जाना बहुत सहज है।—I would rather go to hell than not call you a villain. (तुम्हें दुर्वृत्त न कहनेकी अपेक्षा मुझे नरक जाना स्वीकार है।)—यह किसने कहा है?—ठहरो, याद कर लूँ। अत्यन्त मौलिक है!—खूब है!

गौरी०—तुमको इसमें बड़ा मजा आ रहा है! कहाँ तुमको क्रोध करना चाहिए था—

काली०—क्रोध अवश्य करता, अगर प्रेमशंकर कोई भोंडी, सामान्य या छोटे लोगोंके समान गाली देता। लेकिन ऐसी सभ्य, सरस, प्राञ्जल और जोरदार—वाह! क्या बात है! मैं उसे एक दिन दावत दूँगा।

गौरी०—किसे?

काली०—प्रेमशंकरको। इसी रविवारको, दोपहरके समय। तुम भी आना; तुमको भी न्यौता दिये जाता हूँ। यह गाली-गलौज और एक दफा सुनूँगा—याद रखना।—वाह क्या बात है!—लो, वे भोलानाथजी आ रहे हैं। तो अब मैं भाग जाऊँ।—Ye cannot serve both God and Mammon. (परमेश्वर और शैतान दोनोंकी उपासना एक साथ नहीं हो सकती।)　　(प्रस्थान)

गौरी०—फिर भी ये लोग लाख-लाख मुँहसे भोलानाथकी बड़ाई करते हैं !—लेकिन भोलानाथ आज मेरे घर ! जान गया । क्या ! निश्चय मेरे पैर पकड़कर प्रार्थना करने आया है । आओ तो भैया !—मैं कब्र छोड़ता हूँ ।

[भवानीप्रसाद और भोलानाथका प्रवेश]

भोला०—गौरीनाथ, ये लो रुपये ।—दो तो भवानीप्रसाद !

गौरी०—रुपये कैसे ? (भवानीप्रसाद रुपये देते हैं) कितने हैं ?

भोला०—पाँच हजार रुपये हैं ।—जब हो सके, दे देना ।

गौरी०—(विस्मयके साथ) रुपये ! क्यों !

भोला०—सुना है कि तुम्हें जरूरत है ।—लो ।

गौरी०—इनका व्याज ?

भोला०—व्याज काहेका ! सुना कि तुमको जरूरत है, इसीसे ले आया । ले लो । जब मुझे जरूरत हो, तब तुम दे देना । बस यही चाहिए । व्याज काहेका ! मुझपर नाराज न होना । मुझे घृणा न करो. मुझे प्यार करो, प्यार करो । गौरीनाथ—भाई !

(गलेसे लगना चाहते हैं)

गौरी०—इसकी लिखा-पढ़ी ?

भोला०—लिखा-पढ़ीकी कुछ जरूरत नहीं है। मुझे तुमपर विश्वास है। विश्वासमें ही मोक्ष है। विश्वासमें ही मुक्ति है। विश्वासके ही सहारे संसार चल रहा है। अविश्वासमें ध्वंस है। अविश्वासमें ही नरक है। रसोई बनानेवाला ब्राह्मण भोजनमें विष मिला सकता है। नौकर पीछेसे आकर छुरा भोंक सकता है। इन सबका अबतक विश्वास करता आया हूँ। और तुम तो भले आदमी हो, तुम्हारा विश्वास नहीं करूँगा ? रुपये न फेरना हों, न फेरना। बदलेमें

केवल यही चाहता हूँ कि तुम मुझे प्यार करो, प्यार करो।—चलो भवानीप्रसाद, यह क्या, तुम आँसू पोंछ रहे हो?

भवानी०—जी नहीं, मुझे इस समय एक कहानी याद आ गई।

भोला०—याद आ गई? क्या?

भवानी०—एक दिन एक भेड़ नारायणके पास गई थी, आप जानते हैं?

भोला०—भगवानके पास गई थी? क्यों गई थी?

भवानी०—नालिश करने। जाकर कहा—विष्णुभगवान् बाघ हम लोगोंको पाते ही खा जाते हैं। आप इसका कुछ उपाय कीजिए।

भोला०—नारायणने इसका क्या जवाब दिया?

भवानी०—उन्होंने यही कहा—"भाग भाग; तेरे चिकने-चुपड़े शरीरको देखकर तो खानेके लिए मेरी भी इच्छा डोल उठी है—तब बाघोंकी कौन कहे। खानेके लिए ही तो विधाताने तुम्हें उत्पन्न किया है। नहीं तो वे तुम्हें कमसे कम सभ्य जानवरोंकी तरहके दो पैने सींग देते, या सरपट दौड़नेवाले चार पैर देते"।

भोला०—हाः हाः हाः—

भवानी०—गौरीनाथ ये रुपये क्यों चाहते हैं, सो आप जानते हैं?

भोला०—जरूरत क्या है! उनको रुपयोंकी जरूरत आ पड़ी है—इतना ही जानना यथेष्ट है।

भवानी०—तो भी सुन रखिए। गौरीनाथ इन्हीं रुपयोंसे नीलामी इश्तिहार रद कराके आपका ही एक ताल्लुका खरीदेंगे। ताल्लुका नीलामपर चढ़ गया है।

भोला०—नीलामपर चढ़ गया है?

भवानी०—जी हाँ। आप उस पाजीके हाथमें एक छुरी देकर और गला आगे बढ़कर कहते हैं—बड़ी खुजली हो रही है।

भोला०—यह भी क्या हो सकता है भवानी।—छी, ऐसी बात न कहो।—वह मनुष्य ही तो है।

भवानी०—आजकल, मनुष्य मनुष्यको खा जाता है। राक्षसोंकी अब जरूरत नहीं रही है, इसीसे वे अब इस पृथ्वीपर नहीं देख पड़ते।—भोलानाथजी, खुला संदूक पाकर साधु भी चोर हो जाता है।—गौरीनाथका कुछ दोष नहीं है।

भोला०—छी छी छी, ऐसा न कहो। यह भी कहीं हो सकता है भवानी? और यही अगर हो,—गौरीनाथ, मेरी सारी जमीनदारी ले लो, मेरा सर्वस्व ले लो, केवल मुझे प्यार करो—प्यार करो।

भवानी०—भोलानाथजी, मुझसे कहे बिना रहा नहीं जाता। भगवान्! इस पापपूर्ण कलियुगमें भी ऐसे मनुष्य होते हैं!—गौरीनाथ, खरीदो, इसके बाद इन्हींके रुपयोंसे यदि इनकी जमींदारी खरीदना चाहो, और खरीद सको तो, खरीद लो।—आइए भोलानाथजी।

भोला०—चलो भाई।—गौरीनाथ, मुझे प्यार करो। मुझसे घृणा न करो भाई! (गले लगानेको तैयार होते हैं)

भवानी०—चले आइए। सयाने सयानेसे गलेमिलौवल होती है। सयाने और भोलेभालेकी गलेमिलौवल है कलियुगमें धूर्तता।—आइए।

(दोनोंका प्रस्थान)

गौरी०—यह क्या!—आँखोंमें आँसू क्यों भर आये। नहीं, मैं बड़ा शैतान हूँ! ऐसा कौनसा काम है जो मैंने नहीं किया और कौनसा काम

मैं कर नहीं सकता ! यह तो साधारण बात है !—भोलानाथ, तुम मेरे मनको अपने इस व्यवहारसे गलाओगे ! मैं ऐसा पत्थर नहीं हूँ, जो पसीज उठूँ ।

(हँसते हुए प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान—लक्ष्मीका घर

समय—पिछली रात

[लक्ष्मी मृत्युशय्यापर पड़ी है, पास ही दीनानाथ उपस्थित है]

लक्ष्मी—रामका नाम लो, रामका नाम लो । मैं राम-नाम सुनते सुनते मरना चाहती हूँ ।

दीना०—क्यों बुआ ! वैद्यजी तो कह गये हैं—कुछ डर नहीं है ।

लक्ष्मी—वैद्यजी ठीक कह गये हैं । मुझे कुछ डर नहीं है । मैंने कभी किसीका बुरा नहीं चेता । जो उचित समझा, वही किया । मुझे भगवान् अपने चरणोंमें स्थान देंगे ही । तब काहेका भय !

दीना०—नहीं, मैं यह कहता हूँ कि तुम जल्दी आराम हो जाओगी बुआ ।

लक्ष्मी—मैं अब आराम होना नहीं चाहती भैया । किस लिए जियूँ ? साठ बरसकी अवस्था हुई है । जिन्दगीमें दुःखके सिवा मैं और कुछ नहीं जानती । पाँच लड़के हुए, चार चले गये । एक है, सो वह होनेपर भी नहींके बराबर है । अब और किस सुखके लिए जीना चाहूँगी !

दीना०—भगवान आवेगा । चिन्ता न करो । राहमें ही होगा ।

लक्ष्मी—(लंबी साँस लेकर) मैं भी राहमें हूँ !

दीना०—मैं कहता हूँ कि वह आवेगा। मैं क्या झूठ कहता हूँ! उस दिन कहा था, वह नहीं आवेगा, तो नहीं आया। आज कहता हूँ, वह आवेगा, तो अवश्य ही आवेगा। माकी ऐसी बीमारीकी खबर पाकर भी क्या वह वहाँ बैठा रहेगा!

लक्ष्मी—आवेगा? आवेगा? कब?—अब और कब आवेगा?

दीना०—ये सब कैसी बातें कर रही हो! छी!

लक्ष्मी—हायरे! मरनेके समय भी बारबार उसीकी याद आती है! चाहिए तो यह कि भगवान्‌का नाम लूँ, पर लड़केका नाम याद आता है—रामका नाम लो। रामका नाम लो। लड़का कौन है! कोई नहीं। मेरे लड़का नहीं है, कभी नहीं था। दयामय! इस अन्तकालमें मुझे चरणोंमें स्थान दो। इस अन्धकारमें मत छोड़ो!—भैया, क्या सचमुच ही मेरा भगवानदास नहीं आया?

दीना०—आता है। घबराती क्यों हो बुआ! सो रहो।

लक्ष्मी०—अब एकदम ही सो रहूँगी। भैया, मेरे मर जानेके बाद अगर भगवान आवे, तो उससे कहना, मैं बड़े सुखसे मरी हूँ, मरनेके समय मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ। वह आकर अगर रोवे, तो उसे समझाना—समझाना कि मरनेके समय मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ। केवल एक बार मरनेके समय उसे देखनेको जी चाहा था!—ना, यह कहनेका भी कुछ काम नहीं। मेरे लालको दुख होगा! कहना, मैं सुखसे मरी हूँ। और कुछ नहीं। और अगर वह न आवे—(गला रुँधा जाता है)

दीना०—हायरे माताकी ममता!—बुआ, भगवानदास आ रहा है। आज रातको ही आ जायगा। जान पड़ता है, पहली गाड़ी नहीं मिली।

लक्ष्मी—आवेगा ? आवेगा ? सच कहते हो ? वह आवेगा ? भैया, कहो, वह आवेगा। सच हो, झूठ हो, कहो—वह आवेगा। यही विश्वास साथ लेकर मैं परलोक सिधारूँ !—ना, वह नहीं आवेगा, वह नहीं आवेगा। (मुँह फिरा लेती है)

दीना०—सो रहो बुआ !

लक्ष्मी—यह लो, सोती हूँ।—तो भगवान नहीं आया ! मैं उसकी बहूपर बकी-झकी थी, इसीसे रूठकर लाल चला गया है; अब नहीं आवेगा।—ये चिड़ियाँ बोलने लगीं—क्यों ?

दीना०—हाँ बुआ।

लक्ष्मी—तो सवेरा हो गया ?

दीना०—हाँ।

लक्ष्मी—तुम रात भर नहीं सोये ?

दीना०—सोया क्यों नहीं।

लक्ष्मी—नहीं, तुम नहीं सोये। तुम रातभर मेरे सिरहाने बैठे रहे हो। मैंने जब जब आँख खोली है, देखा है कि तुम्हारा यह उतरा हुआ चेहरा—ये दोनों स्नेहपूर्ण नेत्र मेरी ओर देख रहे हैं। दीनानाथ, जाकर सोओ।

दीना०—मैं सो चुका हूँ बुआ।

लक्ष्मी—ये पक्षी बोल रहे हैं !—दीनानाथ, खिड़की तो खोल दो भैया। एक बार अपने धानसे हरे-भरे खेत, और पक्षियोंके गानसे गूँजता हुआ अपना बाग, एक बार—अन्तिम बार जी भरकर देख लूँ। फिर तो देख पाऊँगी नहीं। खोल दो।

(दीनानाथ खिड़की खोल देता है)

लक्ष्मी—यह ये ही सब हैं ! अभीतक सन्नाटा छाया हुआ है। सब सो रहे हैं। अरे तुम जागो। मेरी ओर देखो। मैं जाती हूँ, सदाके लिए तुम सबको छोड़े जाती हूँ। देखो।—दीनानाथ!

दीना०—बुआ!

लक्ष्मी—एक बार जरा बाहर तो जाओ भैया, मैं अपनी गऊको जरा देखूँगी। उसके बछड़ा पैदा हुआ है। उसे जरा ले आओ, मैं देखूँगी।

दीना०—फिर देखना।

लक्ष्मी—नहीं दीनानाथ, फिर देखनेको समय न मिलेगा। जाओ भैया।

(दीनानाथका प्रस्थान)

लक्ष्मी—वह 'बाँ बाँ' करके मुझे पुकार रही है। मैं हर रोज अपने हाथसे उसे खानेको देती थी। किसी दिन अगर किसी कारणसे न दे सकती थी, तो वह अच्छी तरह खाती न थी; दिनभर मुँह लटकाए रहती थी। मेरा उदास मुख देखकर उसकी आँखोंमें आँसू आ जाते थे!—वह फिर बँ-बा रही है।—अरे मैं यहाँ हूँ—धौली!—मैं यहाँ हूँ!—

दीना०—(नेपथ्यमें) यह देखो बुआ, मैं ले आया।

लक्ष्मी—हाँ, यही मेरी गऊ है!—धौली!—मैं जाती हूँ!—अबसे दीनानाथ तुम्हारी देख-रेख रखेगा। दीनानाथ—भैया—बस—सब समाप्त हो आया है! भगवान्!—तो भगवान् सचमुच ही नहीं आया। ई—श्व—र—(मृत्यु)

[दीनानाथका प्रवेश]

दीना०—बुआ बुआ!—दीपक बुझ गया।—एक—बुलबुला समुद्रमें लीन हो गया। एक ओसका कण कमलके पत्तेसे ढुलक पड़ा।

एक पवित्र साम-गानका नाद उठकर आकाशमें लीन हो गया ।—जाओ बुआ, उस पार; जहाँ सब लोग जगदम्बाकी गोदमें सुखकी नींद सो रहे हैं । पुत्र-कन्या सब निठुर हैं । उनको भूल जाओ । माता जगदम्बाकी गोदमें शान्ति पाओ ।—मैया !—अपनी बेटीको गोदमें स्थान दो ।

चौथा दृश्य

स्थान—भोलानाथके महलकी छत

समय—चाँदनी रात

[भोलानाथ और सरस्वतीका प्रवेश]

भोला०—क्यों सरस्वती, कैसा लगता है ?

सर०—क्या ?

भोला०—जीवन ! खूब मधुर जान पड़ता है, क्यों !—जैसे एक अबाध वसन्त, अगाध चाँदनी—उसके आगे हम लोग मानो किसी गिनतीमें ही नहीं जान पड़ते ।—क्यों !

सर०—किस तरह ?

भोला०—जिस तरह जब कोई फिटन हाँकता जाता है, तब उसके आसपास जो लोग पैदल चले जाते हैं, वे उसे बहुत ही छोटे दर्जेके आदमी जान पड़ते हैं ।

सर०—किसने कहा ?

भोला०—तूने ।

सर०—कब कहा ?

भोला०—अरे सब बातें क्या मुँहसे ही कही जाती हैं ! आँखों आँखोंसे भी बहुतसी बातें हुआ करती हैं ।

सर०—हुआ करती हैं !

भोला०—नहीं होतीं ! जैसे नई बहू बड़े बूढ़ोंके दृष्टि-जालके बीच घूँघटके भीतरसे अपने नये स्वामीकी तरफ देख लेती है, वैसे ही आँखों-आँखोंमें न जाने कितनी बातें हो जाती हैं ।

सर०—कौनसी बातें ?

भोला०—उन बातोंका अर्थ यही होता है कि ये सब तो केवल संसारके चक्करमें भटक-भटककर मर रहे हैं; जो कुछ मजा है—वह हम और तुम लूट रहे हैं।

सर०—कभी नहीं ।

भोला०—अरे नाराज क्यों होती है बेटी, मैं सब जानता हूँ । मैं सदासे तो ऐसा था नहीं । मेरा भी एक जमाना था । तब—" मिलनमें सब गवाँया, विरहमें सब पाया " का मामला था ।—तब फूलोंका पराग पीता था, सुगन्धित वसन्त-पवनकी लहरोंमें डुल पड़ता था । तेरी भी इस समय वही अवस्था है ।—ले, ' मिथ्या ' के राजत्वको अच्छी तरह भोग ले । शीघ्र ही यह सपना दूर हो जायगा ।

सर०—दूर हो जायगा ? सचमुच ?—मुझे डर लग रहा है दादाजी !

भोला०—अभी इसमें देर है ।—क्या मेरे प्रेमका इतिहास तूने नहीं सुना ?

सर०—नहीं । अच्छा अपने प्रेमकी कहानी सुनाइए ना !

भोला०—अच्छा तो सुन और उसके साथ अपना हाल मिलाकर देख । प्रथम प्रणयमें चंद्रमाके प्रकाशमें—अर्थात् छतके ऊपर जब हम दोनों जने अकेले बैठते थे, तब मैं एक बार उस श्रीमुखकी ओर और एक बार चन्द्रमाकी ओर ताकता था—कौन अधिक सुन्दर है, सो कुछ निश्चय नहीं कर सकता था ।

सर०—और वे नहीं देखती थीं ?

भोला०—कौन ?

सर०—दादीजी ।

भोला०—वे !—अरे बापरे !—और किसी ओर देखनेकी तो उन्हें मोहलत ही नहीं मिलती थी । लेकिन वे देखती क्या थीं, सो कुछ मेरी समझमें नहीं आता था ।—मेरी मूछोंका ताव, या आँखकी पुतली, या नाककी गढ़न या दाढ़ीका कटा हुआ धानका खेत (क्योंकि एक दिन भी हजामत न बनानेसे वह खेत उग आता था) । वे जब प्यार करके मेरे इस श्रीमुखपर हाथ फेरती थीं, तब जान पड़ता था, जैसे उस कटे हुए खेतपर कोई सरावन फेर रहा है ।—इस चेहरेको देखती है ?

सर०—देख रही हूँ ।

भोला०—कैसा चेहरा है ?

सर०—बहुत अच्छा है ।

भो०—ए: ! तब तू निश्चय मुझे प्यार करती है ।—यह बात हुए बिना कोई भी इस चेहरेको अच्छा नहीं कह सकता । अक्सर जो लोग मेरे घर आते थे, वे मुझे घरका नौकर समझकर तमाखू भरनेकी आज्ञा देते थे । इसीसे चिढ़कर मैं ऐसी टेढ़ी माँग निकालने लगा था कि मेरा चेहरा बिलकुल भलेमानसोंका ऐसा बन गया था और क्या ! यही देखकर वे रीझ रही थीं !—क्यों ? मिलता है ?

सर०—उसके बाद ?

भोला०—मैं पूछता हूँ—मिलता है ?

सर०—कुछ कुछ । उसके बाद ?

भोला०—हमें जान पड़ता था, पृथ्वीपर और कोई नहीं है—मा नहीं है, बन्धु नहीं है, हैं केवल ' प्राणेश्वर ' और ' प्राणेश्वरी ' ।— मिलता है ?

सर०—उसके बाद ?

भोला०—हम लोगोंकी बातचीत कभी समाप्त न होती थी। मैं अगर कहता था कि हमारे क्लासमें एक लड़का है जिसका नाम है ' महेन्द्र ', तो वह उसीमें कुछ दिल्लगी समझकर हँसते हँसते लोटपोट हो जाती थीं ! और वे अगर कहती थीं कि उनके इत्रको एक दिन एक भौंरेने काट खाया था, तो मैं हँसते हँसते जमीनमें लोट जाता था ।

सर०—बातचीत किस तरह होती थी ?

भोला०—पहले दो अक्षरोंसे शुरू होता था । मैं कहता था 'प्रिये' वे कहती थीं ' नाथ ' । उसके बाद तीन अक्षरोंसे काम लिया जाता था । मैं कहता था ' प्रेयसी ' वे कहती थीं ' वल्लभ ' । फिर चार अक्षरोंकी नौबत आती थी । मैं कहता था ' प्राणेश्वरी ' और वे कहती थीं ' प्राणेश्वर ' । उसके बाद—सो जाते थे ।

सर०—अच्छा ! विरहकी अवस्थामें क्या होता था ?

भोला०—रोज एक चिट्ठी मिलती थी ।

सर०—उसमें क्या लिखा रहता था ?

भोला०—इसका कुछ सिरपैर न था ! 'तुम चाहते हो, हम चाहते हैं '—यही एक बात घुमा फिराकर उस चिट्ठीमें लिखी रहती थी ।

सर०—उसके बाद ?

भोला०—उसके बाद और क्या ! उसके बाद तू कह ।

सर०—अच्छा ! उसके बाद मैं कहती हूँ ! सुनिए ।

भोला०—अच्छा कह। तो फिर तू इस जगह खड़ी हो और मैं इस जगह खड़ा होऊँ।

सर०—क्यों?

भोला०—इस समय तू वक्ता है और मैं श्रोता हूँ।

(दोनों स्थान बदलते हैं)

सर०—अच्छा—अब सुनिए।

भोला०—सुनता हूँ—

सर०—उसके बादकी अवस्था क्या हुई, सो आप जानते हैं।

भोला०—नहीं तो। क्या हुई?

सर०—आपके घर लौटनेमें अगर जरा देरी हो जाती, तो दादीजीका मिजाज ठीक मक्खनकी तरह मुलायम नहीं मिलता था। और दादीजीकी रसोई खराब बननेसे आपका गला भी ठीक ईमन—कल्यानकी तान नहीं अलापता था।

भोला०—हाँ—अलापता तो न था।—उसके बाद?

सर०—बाहरी बैठक-घर और भीतरी अन्तःपुर ये दो जुदी जुदी जगह हैं, यह अच्छी तरह जान पड़ने लगा।

भोला०—हाँ, जान पड़ने लगा। उसके बाद?

सर०—उसके बाद जो अवस्था हुई—वह बड़ी भयानक थी!

भोला०—(आग्रहके साथ) कैसी!

सर०—आपने—अर्थात् प्राणनाथने घरके पास एक अड्डा खोज लिया—जिसमें प्राणनाथकी बातचीत तो प्रेयसीको न सुन पड़े—लेकिन भोजन तैयार होते ही चटसे प्राणनाथको बुलाया जा सके। उसके बाद रातके समय गहनोंकी फर्माइश करते करते प्रेयसीका खर्राटे लेना; संसारी झंझटोंका दुखड़ा रोते-रोते प्राणनाथकी निर्वाण-प्राप्ति; यवनिका-पतन; मच्छड़ोंकी भनभनाहट।—क्यों।—मिलता है कि नहीं!

भोला०—आश्चर्य ! बिलकुल ठीक मिल रहा है !—पर तूने यह सब जाना किस तरह ?

सर०—कल्पनासे। आपके तो कल्पनाशक्ति है ही नहीं !

भोला०—इतनी नहीं है।

सर०—उसके बाद और सुनिए। उस समयकी अवस्थाके साथ ऋतुराज वसन्तका कोई सादृश्य नहीं लख पड़ता था। हाँ, वर्षाके साथ अवश्य ही कुछ कुछ मेल था।

भोला०—वर्षाके साथ ?

सर०—उसके साथ कमसे कम गरजना, बरसना और बिजलीका चमकना तो काफी मिलता था।—बोलो, मिलता है कि नहीं ?

भोला०—अरे अक्षर अक्षर मिलता है।—वह देख, तेरा प्राणेश्वर दूरपर भूखे भिक्षुककी तरह ताक रहा है। उस दृष्टिका अर्थ यही है कि—हट जा बूढ़े यहाँसे।—लो मैं जाता हूँ।—

(जानेको तैयार होते हैं)

सर०—जाइएगा क्यों ?

भोला०—ना ना, नहीं तो तेरा प्राणेश्वर चिढ़ जायगा।

सर०—नहीं, चिढ़ेंगे क्यों ?

भोला०—मेरे रहनेसे तुझे 'प्रेयसी' कहकर पुकारनेमें तेरे प्राणेश्वरके ओठ चिपक जायँगे; ठीक उस तरह हाथ पकड़कर, गर्दन बाँकी करके, मुखकी ओर देखकर हँसते हँसते कह न सकेगा—"प्रिये, मैं तुम्हारा ही हूँ।"

सर०—अच्छा देखिए न।

भोला०—देखूँगा।—अरे भैया, इधर आओ। कूद आओ ! हाः हाः हाः—आओ भैया !—लो वह आ रहा है।—चुप।

[भगवानदासका प्रवेश]

भग०—(सिर झुकाये हुए) आप पुकार रहे हैं ?

भोला०—इस पुकारनेकी अपेक्षामें तुम थे या नहीं !—इसे पहचानते हो ?—क्यों ! चुप हो रहे ! एकबार—क्या कहकर इसे पुकारते हो—पुकारो तो । न हो, नाम लेकर ही पुकारो । 'सरस्वती—ई ई ई'—आहा, कैसा मधुर है ! मेरी ही जीभ मिठासके मारे चिपकी जाती है, तब तुम्हारी कौन कहे !—तुमसे तो पुकारा ही न जायगा । मेरा बहुत दिनोंका अभ्यास है, तब भी नाम लेकर पुकारते पुकारते मानों ढुल पड़ता हूँ और देखता हूँ कि पुकारा नहीं गया ।

सर०—दादाजी न जाने क्या क्या बे-सिरपैरका बके जाते हैं !

भोला०—यह उन्मादका प्रलाप है !—क्यों भैया, चुप क्यों हो सिर क्यों झुका लिया ?—मगर मेरी पोतीकी ओर तिर्छी नजरसे देखते भी जाते हो । और वह भी—हूँ !

(सरस्वती हँस देती है)

भोला०—ओरे ! ओरे ! मैं और तेरी दादी, दोनों ठीक इसी तरह करते थे रे, ठीक इसी तरह करते थे !—कैसे दिन गुजर गये ! (लंबी साँस लेते हैं)—अच्छा, अभी तक आँखों आँखोंसे बातचीत हो रही थी, अब कुछ मुँहसे भी हो !—बेटी, मेरा यह नत-दमांद गूँगा है क्या ! अच्छा, मैं हटा जाता हूँ !　　(प्रस्थान)

[भवानीप्रसादका प्रवेश]

भवानी०—दादाजी ! आप समझते हैं, कोई नहीं देखता ! देखता है—एक आदमी देखता है; और रोता है । आप जितना ही हँसते हैं,

वह उतना ही रोता है। आपके मुँहमें हँसी और हृदयमें रोना है। जिसे पराये घर भेज देना हो, उसे इतना प्यार करना ठीक नहीं। वह जन्मसे ही पराई सम्पत्ति है। लोग लड़कीके मर जानेपर इतना रोते क्यों हैं, मालूम नहीं। (प्रस्थान)

पर्दा बदलता है

स्थान—महलकी छत

समय—चाँदनी रात

[भगवानदास और सरस्वती]

भग०—तुम्हारे दादा तुमको खूब प्यार करते हैं?

सर०—बहुत प्यार करते हैं।

भग०—तुम भी उन्हें प्यार करती हो?

सर०—उन्हें?—जगतमें मैं और किसीको इतना प्यार नहीं करती। मैं अपने दादाके लिए जानतक दे सकती हूँ।

भग०—और मेरे लिए?

सर०—तुमसे अभी के दिनकी जान पहचान है?

भग०—अच्छा—अच्छी बात है!

सर०—क्या, खफा हो गये! (हाथ पकड़कर) छी:!—खफा न होओ।

भग०—(हाथ छुड़ाकर) जाओ, तुम मुझे प्यार नहीं करतीं।

सर०—करती हूँ। क्योंकि तुम मेरे स्वामी हो। यह अभ्यासगत प्यार है। और दादाजीको जो प्यार करती हूँ, वह प्रकृतिगत या स्वाभाविक है।

भग०—वही अधिक है।

सर०—निश्चय। उनमें और तुममें बड़ा अन्तर है।

भग०—क्या अन्तर है?

सर०—मैं अगर मर जाऊँ, तो दादाजी शोकके मारे अन्धे हो जायँगे; और तुम—तुम सालके भीतर ही नई जोरू व्याह कर ले आओगे।

भग०—कभी नहीं।

सर०—अच्छा दिखा दूँगी।

भग०—किस तरह?

सर०—(हँसकर) सचमुच ही मरकर दिखा देनेको जी चाहता है कि तुम मर्दोंकी जात कैसी भंड या ढोंगी होती है।

भग०—कैसे?

सर०—तुम लोग पहले प्यार दिखाते हो—समुद्रकी लहरोंकी तरह किनारेपर बाहु उठाकर मानों उसे ग्रास करनेके लिए आते हो। उसके बाद जी भर जानेपर उन्हीं समुद्र-तरंगोंकी तरह शिथिल होकर किनारेपरसे खिसक जाते हो।

भग०—नहीं मैं तुम्हें उस तरह प्यार नहीं करता।

सर०—तो किस तरह प्यार करते हो?

भग०—मेरा यह प्यार आकाशकी तरह अनन्त, उदार और स्वच्छ है। इसका अन्त नहीं है, इसमें तृप्ति नहीं है। यह प्यार पहाड़की तरह अटल है, ध्रुवताराकी तरह स्थिर है।—तुम हँस रही हो!—जाओ, तुम मुझे प्यार नहीं करतीं।

सर०—मैं तुम्हारी कविता सुन रही थी!—तुम्हारी मा कैसी हैं! कोई चिट्ठी आई है?

भग०—इस बीचमें यह माका प्रसंग कहाँसे आ गया?

सर०—यह प्रसंग इस चर्चाके भीतर नहीं, बाहर है।—अच्छा! 'मा' पदार्थ बहुत ही गद्यमय है, क्यों?

भग०—क्यों?

सर०—नहीं तो क्या तुम छुट्टियोंमें एक बार उनके पास जाते भी नहीं! छुट्टियाँ सुसरालमें ही बिता दीं! आँखोंकी लाज भी नहीं है! यहाँ करते क्या हो! वहाँ तुम्हारी मा शून्य-दृष्टिसे तुम्हारी राह देख रही हैं।

भग०—किसने कहा?

सर०—मैं जानती हूँ। यह बात भी किसीके कहनेकी है?—हाय स्वामी, तुमने माको नहीं पहिचाना। जिस दिन वे नहीं रहेंगी, उसी दिन उन्हें पहिचानोगे।

भग०—तुमने पहिचाना?

सर०—हाँ—क्योंकि मेरे अब मा है नहीं। यह रत्न खोये बिना ठीक पहिचाना नहीं जाता—इसकी कदर नहीं होती। तुम्हारी बूढ़ी मा आँखोंमें आँसू भरे तुम्हारी राह देख रही है, और तुम यहाँ एक तुच्छ स्त्रीके पैरोंमे पड़े हुए हो!—जिसे सालभर पहले पहिचानते भी न थे; जिसमें एक मात्र गुण है और वह गुण है रूप और जवानी!

भग०—तो तुम्हारी यह इच्छा नहीं है कि मैं यहाँ रहूँ।

सर०—मेरी इच्छा है कि यहीं रहो—लेकिन माको छोड़कर नहीं। प्रेमके चरणोंमें अपने स्वार्थकी बलि दे सकते हो—लेकिन कर्त्तव्यकी नहीं—मातृभक्तिकी नहीं।

भग०—यह मेरे विचारनेकी बात है। तुम्हारा इसमें क्या!—तुम्हारा काम है मुझे आदर, अलिंगन और चुम्बन देना।

सर०—मैं तुम्हारी रखेल रंडी नहीं हूँ। मैं तुम्हारी स्त्री हूँ—तुम्हारे लिए मुझे डर माळूम होता है।

भग०—क्यों?

सर०—जब तुम्हें अपनी माताका खयाल नहीं है, तब नहीं जानती, तुम कौन पाप-कर्म नहीं कर सकते। मातृभक्ति—जो कर्तव्य सब कर्त्तव्योंकी जड़ है, जीवनकी पहली महाशिक्षा है, मनुष्यप्रकृतिका अस्थि-मज्जागत सनातन धर्म है; मातृभक्ति—जिसके कोमल करस्पर्शसे कर्त्तव्यकी कठोरता दूर हो जाती है, भक्ति और स्नेह हँस उठते हैं—जिस कर्त्तव्यको तर्ककी अपेक्षा नहीं है, जो कर्त्तव्य युक्तिकी सहायता नहीं चाहता, विधि और विधानको नहीं मानता; मातृभक्ति—जो मनुष्य-जीवनको एक स्वर्गीय प्रतिभासे मण्डित कर देती है, आनन्दके साथ प्रकृतिके ऋणको चुकाती है, आत्माको स्फूर्ति देती है, अभ्यासगत संस्कारको जीवनका मूल मन्त्र बना देती है, मनुष्यकी सारी कोमळ प्रवृत्तियोंके ऊपर हुकूमत करती है, घटना-विपर्ययके ऊपर क्रीडा करती है, मृतप्राय शक्तिको जीवित करती है, और मृत्युकी भयानक अँधेरी घड़ीको प्रकाशित कर देती है; उस मातृभक्तिसे जो रहित है उस कंगालके पास और रक्खा ही क्या है! वह जीवनमें कौनसा पाप-कर्म नहीं कर सकता! इसीसे कहती थी—सावधान! संसारमें मासे बढ़कर कोई नहीं है—बहन, कन्या, स्त्री, कोई नहीं है।—कहो, तुम्हारी मा अच्छी तरह हैं?

भग०—हाँ।

सर०—झूठ कहते हो। निश्चय ही वे अच्छी नहीं हैं। वे माँदी हैं?

भग०—हाँ, लेकिन बहुत नहीं।

सर०—फिर झूठ! मैं तुम्हारी स्त्री हूँ, मुझसे झूठ!—ना, मुझे जान पडता है कि तुम्हारी मा बहुत सख्त बीमार हैं। नहीं हैं? क्यों! चुप

हो रहे ! समझ गई। तुम्हारी मा इस समय कहाँ है ? मैं उनकी दासी बनूँगी। उनकी सेवा-टहल करूँगी। बीमारीकी हालतमें मैं उनकी देख-रेख करूँगी। तुम मत जाओ, मैं जाऊँगी। बोलो, उनको क्या हुआ है ?

भग०—निमोनिया—और कुछ नहीं।

सर०—तो मैंने जो सपना देखा, वह झूठ नहीं है ? मैं उनके पास जाऊँगी। आज ही जाऊँगी। तुम यहीं रहो। बचपनमें अपनी माको खो चुकी हूँ। इससे सेवा करनेकी साध नहीं मिटी। 'मा' कहकर पुकारनेकी भी साध नहीं मिटी। अगर और एक मा पाई हैं, तो अबकी उन्हें मा कहकर, सेवा करके, अपनी साध मिटाऊँगी। मैं जाऊँगी।

भग०—इस अवस्थामें तुम्हारा कहीं जाना ठीक नहीं।

सर०—ठीक नहीं है ! तुम उनके लड़के होकर यह बात कह रहे हो !—तुम्हारी मा, जिन्होंने तुमको गर्भमें रक्खा है !—बोलो, तुम्हारी मा इस समय कहाँ हैं ?

[दीनानाथका प्रवेश]

दीना०—स्वर्गमें ! उत्सव करो—खुशी मनाओ भगवानदास ! आफत दूर हो गई। उसके मृत शरीरपर तुम दोनों जनें ताण्डव नृत्य करो ! तुम्हारी बला गई !

सर०—उनकी मृत्यु हो गई ?

दीना०—बहू ! धन्य है तुम्हारी यह बहुओंकी जाति ! तुम पति-योंको पशुओंसे भी अधिक अधम कर डालती हो, भाईको भाईका शत्रु बना देती हो, पुत्रको माताकी गोदसे छीन लेती हो ! धन्य है तुम्हारी इस जातिको ! बलिहारी !—और तू भगवानदास, नीच, दुष्ट और माकी जान लेनेवाला है ! नरकमें भी तुझको स्थान न मिले—मैं तो यही कहूँगा ! मैं तुझको शाप देता हूँ कि तू अगर सोना छुए, तो

वह मिट्टी हो जाय। तू अपनी मरी हुई माताके मुखकी छाया देख देखकर सदा काँपता रहो। मैं तुझे यही शाप दिये जाता हूँ, याद रखना।

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—बागकी बारहदरी

समय—रात्रि

[गौरीनाथके दोस्त लोग भिन्न भिन्न प्रकारकी अवस्थाओंमें उपस्थित है। वहाँसे कुछ दूरीपर भोजन बनानेवाले नौकर भोजनका सामान पात्रोंमें सजा रहे हैं।]

माधव०—आजकी पार्टी (दावत) ठाठके साथ होगी।

शारदा०—जान पड़ता है, अबकी दुर्भिक्ष पड़ेगा।

बुद्धूलाल—ओरे भग्गू, तमाखू भर ले।

शंकर—मनोहरलालकी स्त्री बहुत माँदी है।

शारदा०—यह साबित हो गया है कि बख्तियार खिलजीने 'नदिया' (नवद्वीप) पर हमला नहीं किया।

माधव—अबकी जाड़ा खूब पड़ रहा है।

नारायण—अजी गीतगोविन्द तुम्हें कैसा लगता है?

हरिदत्त—अरे भग्गू, सोडावाटर भी लाया है?

चन्द्रभानु—तुम्हारे लड़के-वाले कितने हैं?

शारदा०—अशोकके समयमें बौद्धधर्मका प्रचार नहीं हुआ। एक ताम्रपत्रका लेख मिला है।

काली०—सुनोजी! Give me a glass of liquid fire—distilled damnation. (मुझे एक ग्लास तरल अग्नि—चिर-दण्डका-सत दो)

[गौरीनाथका प्रवेश]

शंकर—लो, वे गौरीनाथ बाबू आ गये।

गौरी०—कहाँ ! अभीतक नहीं आई ?

शंकर—जापानियोंने जिस दिन पोर्टआर्थरपर दखल किया था, उस दिन हमारे आफिसमें जो लोग रूसके पक्षमें थे, उन्होंने तमाखू नहीं पी थी।

माधव—सचमुच !—वह देखो—

[सारंगियोंके साथ मुन्नीबाईका प्रवेश]

चन्द्रभानु—हट जाओ, हट जाओ। बी साहबके लिए रास्ता कर दो, रास्ता कर दो।

(चन्द्रभानु सबको हटाकर रास्ता करता है। माधव चादरसे रास्ता झाड़ता है। बुद्धूलाल चादरसे मुन्नीके हवा करता है। शारदा शान्तभावसे तमाखू पीते पीते शंकरके साथ धीरे धीरे बातें करता है। बैजू जाकर मुन्नीका हाथ पकड़ता है और कहता है—) " आइए "

मुन्नी—हाथ छोड़िए। (छुड़ा लेती है)

बैजू—अरे बापरे ! यह तो रण्डी नहीं, काला नाग है। एकदम फन फैलाकर फुफकार उठा ! आओ रानी ! (फिर हाथ पकड़ना चाहता है)

मुन्नी—खबरदार, मुझे स्पर्श नहीं करना।

बैजू—अजी गौरीनाथ ! (सिर घुमाकर इशारेसे प्रश्न करता है)

काली०—अजी बी साहबकी भाषा तो एकदम अखबारी भाषा है—साधुभाषा है ! ये तो कोई बहुत ही भले घरकी हैं।—Is this vision ! Or a fairy ! She seems to me too fine to be a woman. (यह काल्पनिक चित्र है या अप्सरा ? मेरी समझमें नारी तो ऐसी सुन्दरी हो नहीं सकती।)

गौरी०—इतनी नाराज क्यों होती हो रानी, तुम तो वेश्या हो।

मुन्नी—जिसकी मा वेश्या और बाप लम्पट है, वह वेश्या न होकर क्या स्वर्गकी देवी होगी ? तो भी मैं वेश्या नहीं हूँ।

[सब चौंककर मुन्नीकी ओर देखने लगते हैं]

बुद्धू०—तुम वेश्या नहीं हो ? तो तुम क्या सीता सती हो ?

मुन्नी—ओः ! अस्वीकार भी नहीं कर सकती। यह कलंक—यह दोष—विधाताने मेरे मत्थेपर दाग दिया है। मैं क्या कर सकती हूँ ! —जाने दो। साहब, गाना शुरू होगा ?

गौरी०—तुमसे सिर्फ गानेके लिए कहा गया है, या नाचोगी भी ?

मुन्नी—जी नहीं, सिर्फ गाऊँगी।

कामता०—और हम आँखें बंद करके सुनेंगे ?—इसे क्या तुमने उपासनाका मन्दिर समझा है !

माधव—अच्छा, गाओ।

मुन्नी—(सारंगीवालोंसे) मिलाओ।

(संगतके लोग फेंट बाँधते हैं)

गौरी०—ठहरो ! पहले ठीकठाक कर लूँ ! (मुन्नीसे) तुम क्या सिर्फ गानेके लिए आई हो ?

मुन्नी—जी हाँ।

गौरी०—सो न होगा।

मुन्नी—आपकी खुशी। (जाना चाहती है)

गौरी०—जाती कहाँ हो !—पेशगी रुपये लेकर—

मुन्नी—(संगतवालोंसे) रुपये फेंक दो।

(एक सारंगीवाला नोट और रुपयोंकी पोटली फेंक देता है। मुन्नी और उसके साथी जाते हैं)

माधव—ओः ! एकदम क्वीन सेमिरेमिस् है।

वैजू—आज मनोरंजनका सब सामान मिट्टी कर दिया।—अजी पुकारो—पुकारो। गाना ही हो। शिवदयालु, पुकारो।

(शिवदयालु बाहर जाकर मुन्नी और उसके साथियोंको बुला लाता है)

गौरी०—अच्छा गाओ, तुम कैसी हो, सो और दिन देख लूँगा।

मुन्नी—(साथियोंसे) सारंगी मिलाओ।

(संगतके लोग तबला और सारंगी मिलाते हैं)

शारदा०—(शंकरसे) तुम महामूर्ख हो!

शंकर—तुम वज्रमूर्ख हो!

शारदा०—सन् १४१५!

शंकर—सन् १४१६!

शारदा०—बेअदब!

शंकर—चुप रहो!

गौरी०—क्या है! क्या हुआ! क्या हुआ!

शारदा०—Battle of Agincourt (अजिनकोर्टके युद्ध) का सन् १४१५ है।

शंकर—नहीं, Batter of Agincourt (अजिनकोर्टके युद्ध) का सन १४१६ है।

शारदा०—पाजी!

शंकर—बेवकूफ!

शारदा०—तो आ जाओ (आस्तीन चढ़ाता है)।

शंकर—आओ न, देखूँ (आस्तीन चढ़ाता है)!

गौरी०—अरे करते क्या हो! करते क्या हो!—हुआ क्या?

शारदा०—Battle of Agincourt (घूँसा तानता है)

शंकर—हाँ Battle of Agincourt (घूँसा तानता है)

शारदा०—सन् १४१५ (हुंकार)

शंकर—सन् १४१६ (हुंकार)

चंद्र०—अरे Battle of Agincourt किस सन्में हुआ इस बातको लेकर घूँसे क्यों तानते हो ?—क्या यहीं इसका झगड़ा करना है ! यहाँ तो दिल बहलाने आये हो !

शारदा०—अच्छा—आओ, बाहर आओ । (धोती समेटकर बाँधता है)

शंकर—आओ न । (धोती समेटकर बाँधता है)

शारदा०—मैदानमें चलो ।

शंकर—चलो ।

शारदा०—(कूदता हुआ) Battle of Agincourt.

शंकर—(कूदता हुआ) Battle of Agincourt.

दोनों—Battle of Agincourt. (हुंकारके साथ जाते हैं)

गौरी०—अरे ! ये करते क्या हैं ! Battle of Agincourt के लिए लोग लड़भिड़ क्यों रहे हैं !

काली०—बेशक दोनों बहादुर हैं ! सचमुच ही जैसे दोनों जनें Battle of Agincort करने गये हैं ! लँगोटा मार लिया है, आस्तीनें चढ़ा ली हैं, घूँसे तान लिये हैं, कूदते-फाँदते हैं और .क्या चाहते हो ? Strange, all this difference should be betwixt Tweedledum and Tweedledee (आश्चर्य है कि बेकार इतना वादविवाद हो रहा है ।)

मुन्नी—क्यों साहब गाऊँ ?

गौरी०—गाओ ।

काली०—ठहरो, पहले यह ठीक हो जाय कि Battle of Agincourt किस सन्में हुआ ! मुझे बड़ी चिन्ता है ! रातको नींद नहीं आती ।

(सबका हँसना)

गौरी०—तुम हिन्दीके पद भी गाती हो, या सिर्फ़ उर्दूकी ग़ज़लें ?

मुन्नी०—दोनों गाती हूँ ।

काली०—तो फिर उर्दू ही गाओ—जिसे समझ सकूँ । Hindi is Greek to me. (हिन्दी मेरे लिये ग्रीक है ।)

वैज्—नहीं, पहले एक हिन्दीका पद हो जाने दो । (सुरमें) " प्रेम है सबल सहायक संग । "

काली०—उस्ताद !

चंद्र०—नहीं जी, उर्दू ही गाओ—ये सब रहने दो । उर्दू ही गाओ ।

माधव—लेकिन अरबी न छाँटना ।

बुद्धू०—हाँ अरबी न—फारसी कोई नहीं समझेगा ।

काली०—देखो न, क्या गाती है । Perhaps it may turn out a song or perhaps turn out a sermon (कौन जाने, यह गीत या धर्मोपदेश है ।)

गौरी०—पहले एक हिन्दी गाओ ।

मुन्नी०—जो हुक्म । (गाती है)

पलकनसों पग झारों री मैं जब घर आवे मेरा प्यारा ।
गरवा लगाऊँ, तपन बुझाऊँ,—तन मन धन सब वारा ॥

[हीराका प्रवेश]

वैज्—यह कौन है ?

गौरी०—(उसे देखकर चौंककर) तुम !—यहाँ !

हीरा—वाह ! खासा सजा हुआ विलास-भवन है, चौड़ा साफ और दर्शनीय कमरा है, अलौकिक और हृदयको पागल बना देनेवाला संगीत है !—(गौरीनाथसे) क्यों ! मुँहपर कालिख क्यों आ गई ? वह बात नहीं कहूँगी, डरो नहीं । राह-राह जा रही थी, यहाँ रोशनी देख पड़ी, हँसीके साथ सुन्दर गानेकी आवाज सुन पड़ी; सोचा, जरा झाँककर देखे जाऊँ कि यहाँ किस प्रकारका प्रेतका नाच हो रहा है ।

गौरी०—तो—अब जाओ ।

हीरा—जरा ठहर ही जाऊँ, तो क्या हर्ज है । बाहर घोर अन्धकार है । रास्तेमें तमाम कीचड़ ही कीचड़ है । जाड़ेकी ठंडी हवा चल रही है । बहुत दिन पहलेकी उस काल-रात्रिका स्मरण हो आया । जीमें आया, उस पाजी पापीको देखे जाऊँ ।

गौरी०—दरबान !

हीरा—कुछ कहती नहीं हूँ; डरो नहीं । इस समय इस सुसज्जित नाट्य-शालामें, इस मधुर गीतसे गूँजते हुए प्रकाशपूर्ण विलास-भवनमें अगर वह बात कहूँगी—तो संगीत भयसे थम जायगा, प्रकाश आतङ्कसे मुँह छिपा लेगा, हँसी आर्त्तनाद कर उठेगी ।

गौरी०—ऐ दरबान !

हीरा—उसके बाद उसी अन्धकारमें एकाएक मसानकी चित भकसे जल उठेगी, सुगन्धित पवन मड़े हुए मुर्देकी दुर्गन्ध उगलने लगेगा, जमीन फोड़कर शैतान उछलने लगेंगे । नहीं, वह बात प्रकट नहीं करूँगी । उस बातको सुनकर मित्र मित्रके मुँहकी ओर आँख उठाकर देख न सकेगा, स्त्री अपने पतिको गले लगानेकी आड़में छिपा हुआ छुरा देखेगी, सन्तान अपनी माताके दूधमें विष मिले होने-

का सन्देह करेगी। कुछ नहीं कहूँगी—डरो नहीं। तो भी जी चाहता है कि एक बार उस बातको जगत्के आगे प्रकट कर दूँ और फिर क्या होता है—सो जरा देखूँ। जरा कहकर देखूँ, क्या होता है?

गौरी०—कहाँसे एक पगली आकर भिड़ गई है! निकालो इसे—

हीरा—क्या कहा? पगली? निकालो इसे? तो कहूँ!—हाँ, कहूँगी। इस बातको फैला दूँगी! अब इसे दबाकर नहीं रक्खा जाता।—साहबो, मैं पगली नहीं हूँ। जो बात मैं आज कह रही हूँ, वह पागलका प्रलाप नहीं है।

गौरी०—दरवान! दरवान!

[दरवानको पुकारता हुआ बाहर जाता है]

हीरा—हम लोग ईश्वरको साक्षी मानते हैं, लेकिन ईश्वर कभी गवाही देने नहीं आते। वे हाथ समेटे बैठे हैं। मरा मनुष्य गवाही नहीं देता;—केवल स्थिर, आभाहीन, दृष्टिहीन नेत्रोंसे ताका करता है। मगर मैं जो बात इस सभामें प्रकट करूँगी, उसके हरएक अक्षरको चाहे जिस अदालतमें साबित कर सकती हूँ। यह दुर्बल, फटे चीथड़े पहने, रूखे बाल बिखेरे, धूलसे भरी हुई, कंगाल औरत—एक अच्छे खानदानकी पढ़ी-लिखी औरत है।

[गौरीनाथका फिर प्रवेश]

गौरी—दरवान गया कहाँ? कहता हूँ, निकल जा, नहीं तो—

हीरा—साहबो, आप लोगोंके आगे यह जो एक सीधे-सादे भले-मानुसकी पोशाक पहने खड़ा है,—सो ठग, व्यभिचारी, हत्या—

गौरी०—(दौड़कर हीराका गला जोरसे दबाता है) चुप रह—

हीरा—बचाओ—बचाओ—(गला छुड़ानेकी चेष्टा करती है) तो मैं आज यह बात प्रकट करके मरूँगी।—बचाओ।

मुन्नी—सामने एक स्त्रीकी हत्या हो रही है और सारे मर्द पत्थरकी मूरतोंकी तरह चुपचाप बैठे तमाशा देख रहे हैं! जब मर्द ऐसे नामर्द बन गये हैं, तो फिर उनका काम एक स्त्रीको ही करना पड़ेगा। (दौड़कर गौरीनाथका गला पकड़ती है) छोड़ दो—छोड़ो अभी—नहीं तो—

गौरी०—(हीराको छोड़कर) चुप रहो! (मुन्नीका गला पकड़ता है)

मुन्नी—इसके लिए भी तैयार होकर आई हूँ! (अपने शलूकेके नीचेसे एक तेज और चमकता हुआ छुरा निकालकर और गौरीनाथकी छाती ताककर) सावधान !

(गौरीनाथ उसी दम मुन्नीको छोड़कर पीछे हट जाता है; मगर मुन्नी छुरा हाथमें लिये वैसे ही खड़ी रहती है। महफिलके प्रायः सभी आदमी उठकर खड़े हो जाते हैं और चुपचाप विस्मयके साथ मुन्नीकी ओर ताकते हैं। हीरा दोनों आँखें फाड़कर मुन्नीको देखती है। फिर भयपूर्ण स्वरसे चिल्लाकर मुन्नीसे पूछती है—"कौन हो तुम?—कौन हो तुम?" इसके साथ ही मूर्छित हो जाती है।)

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—भोलानाथकी बाहरी बैठक

समय—सबेरा

[भोलानाथ, प्रेमशंकर और कालीचरण]

प्रेमशंकर—आप अपनी सम्पत्ति दोनों हाथों लुटा रहे हैं—अन्तमें आपको हाथ धोकर राहमें बैठना पड़ेगा।

भोला०—जब बैठना होगा, बैठूँगा।

प्रेम०—तो भी लुटाये जायँगे?

भोला०—जब तक है, जरूर लुटाऊँगा!

प्रेम०—अब और है क्या, जो लुटाइएगा?

भोला०— इसके क्या माने! इस घरको क्या तुम साधारण संपत्ति समझते हो भैया!—और जमींदारी भी तो है!

प्रेम०—जमींदारीके इलाके तो एक एक करके सब बिक गये।

भोला०—ऐसा कहीं हो सकता है! तो फिर रुपए आते कहाँसे हैं?

प्रेम०—ये रुपए तो नीलाममें मालगुजारी अदा करनेसे बढ़ी हुई रकमके हैं। और आममुख्तारने दया करके ला दिये हैं।—आपको यह भी नहीं मालूम? आप जानते हैं, इस समय आपकी जमींदारीकी आमदनी कितनी है?

भोला०—कितनी है?

प्रेम०—आपको कुछ भी खबर नहीं है?

भोला०—नहीं।

प्रेम०—आश्चर्य है !—अच्छा, जमींदारीकी आमदनी एक लाख रुपए होगी ?

भोला०—सो होगी !

प्रेम०—या पचास हजार ?

भोला०—सब मिलाकर !—

प्रेम०—इतनी भी नहीं है ।

भोला०—नहीं है, सच ?

प्रेम०—इस समय सालाना आमदनी दस हजार तक होनेमें भी सन्देह है ।

भोला०—यह क्या !—

प्रेम०—दो लाख थी, अब दस हजार रह गई है ।

भोला०—हाँ ! बाक़ी एक लाख नब्बे हजार क्या हुई ?

प्रेम०—मालगुजारी न पहुँचनेसे सब इलाके नीलाम हो गये ।

भोला०—जाने दो—आफ़त गई ।

प्रेम०—यह सब आपके गुमाश्तेकी करतूत है । सारा लगान वसूल करके उसकी रकम वह ख़ुद ही हड़प कर गया है ।

भोला०—सच ! उसने ऐसा क्यों किया ?—मुझसे माँगता, तो मैं ही उसे दे देता ।

प्रेम०—इसके सिवा उसने गौरीनाथसे मिलकर बिना इश्तिहारके ही जमींदारी नीलाम करा दी है ।

भोला०—नीलाम करा दी है ? नहीं नहीं, यह भी कहीं हो सकता है ! तुमने सुननेमें भूल की है ।

प्रेम०—सुननेमें भूल की है !—पहले सिर्फ़ सुना ही था, पर इस समय तो विशेष रूपसे जाँच करके सब जान लिया है ।—सुनिए, अब

भी जरा हाथ समेटिए; नहीं तो दो दिन बाद भोजनका भी सुभीता न रहेगा।

भोला०—(हँसकर) यह भी कहीं हो सकता है भैया ?

प्रेम०—जो कुछ जमींदारी बची है, आजसे उसकी देख-रेख मैं करूँगा। आप अब हाथ समेटकर बैठिए।

भोला०—हाथ कहीं समेटे जा सकते हैं ? गरीबकी प्रार्थना सुनकर आँखोंमें आँसू आप ही भर आते हैं, उसे छातीसे लगा लेनेके लिए हाथ आप ही आगे बढ़ जाते हैं। हाथ समेट लूँ ! यह भी कहीं हो सकता है भैया !

काली०—The robbed that smiles, steals something from the thief (लुट जानेपर हँसना लूटनेवालेहीका कुछ हर लेना है)

(प्रस्थान)

भोला०—प्रेमशंकर, चेष्टा करनेसे अपने घरका खर्च तो कम कर सकता हूँ; मगर दूसरोंका दुःख दूर करनेसे हाथ समेटना असंभव है। तुम नहीं जानते कि त्यागमें क्या आनन्द है, दानमें क्या सुख है ! आँखोंके आँसू पोंछ देना, सूखे ओठोंमें हँसी पैदा कर देना, मलिन मुखको प्रसन्न करना—यह भी एक सृष्टि है। कठोरपर प्यार करना, पापीको कृतज्ञ बनाना—तुम जानते नहीं प्रेमशंकर—हें हें हें—तुम अभी बिल्कुल ही बच्चे हो !

प्रेम०—और इधर एक एक करके आपकी सब जमींदारी गौरीनाथने खरीद ली।

भोला०—खरीद ले। उसे तो आनन्द मिलता है !

प्रेम०—चोर धर्मकी कहानी नहीं सुनता। (प्रस्थान)

भोला०—प्रेमशंकर बहुत नाराज हो गया है !—वह कौन आ रहा है ? दीनानाथ है ? हाँ दीनानाथ ही तो है ! आओ दीनानाथ, बहुत दिनोंके बाद आये !

[दीनानाथका प्रवेश]

भोला०—आओ मेरे प्रियतम बाल्य-बन्धु—(जल्दीसे उठकर गले लगाकर) कब आये ?

दीना०—आज ही !

भोला०—ओः ! कबसे तुम्हें नहीं देखा—मेरी सरस्वती तो अच्छी है ?

दीना०—हाँ, बहुत अच्छी ।

भोला०—और भगवानदास ?

दीना०—उससे भी अधिक ।

भोला०—बैठो बैठो । सरस्वतीका हाल कहो ! कबसे उसे नहीं देखा—तबीयत अच्छी नहीं रहती—बाई सताये रहती है—पर इसे छोड़ो, बताओ, सरस्वतीके साथ तुम्हारी मुलाकात होती थी ?

दीना०—हाँ, होती थी ।

भोला०—वह तुमसे कुछ मेरी बातचीत करती थी ?—कहती थी कि वह मुझे अब भी उसी तरह प्यार करती है ?

दीना०—प्यार क्यों न करेगी !—तुमने उसका व्याह जो कर दिया है !

भोला०—कैसा व्याह कर दिया है !

दीना०—बहुत ही अच्छा ! उस सोनेकी प्रतिमाको एक चांडालके हाथ सौंप दिया है ।

भोला०—इसके क्या माने !—

दीना०—उसकी अवस्था जरा खुद जाकर देख आओ !—इस समय उसे देखकर पहचान भी न सकोगे ।

भोला०—क्यों !

दीना०—क्यों क्या ! मानसिक कष्टसे—भरपेट भोजन न मिल-नेसे—

भोला०—भरपेट भोजन न मिलनेसे ! क्यों ! मैं उसे हर महीने पाँच सौ रुपया जो भेजता हूँ, सो क्या नहीं भेजे जाते ?—प्रेमशंकर !—

दीना०—भेजे जरूर जाते हैं और पहुँचते भी हैं। मगर तुम्हारा लाड़ला नत-दमाद उनमेंसे चार सौ रुपया एक वेश्याके चरणोंमें अर्पण कर देता है।

भोला०—क्या ! किसके चरणोंमें अर्पण कर देता है ?

दीना०—और किसके चरणोंमें ! उसी वेश्याके चरणोंमें !—खूब छाँटकर लड़का खोजा था ! तुम्हारी सम्पत्तिका उपभोग एक वेश्या कर रही है।—बलिहारी !

भोला०—तुम क्या यह कहना चाहते हो कि भगवानदासने एक वेश्या रक्खी है ?

दीना०—सो क्या तुम नहीं जानते ? अभी तक नहीं सुना ?

भोला०—नहीं, बिटियाने तो यह कुछ लिखा नहीं।

दीना०—लिखा नहीं कि भरपेट खानेको नहीं मिलता ?

भोला०—कहाँ !—नहीं तो।

दीना०—लिखा नहीं कि उसका बच्चा भरपेट आहार न मिलनेसे और ज्वरमें दवा न पानेसे मर गया ?

भोला०—कौन ! बच्चा ?

दीना०—हाँ बच्चा।

भोला०—मर गया ?—यह सब क्या कह रहे हो ?

दीना०—यह भी नहीं सुना ?

भोला०—मर गया ?—कहाँ ! बिटियाने तो कुछ नहीं लिखा।

दीना०—लिखा नहीं ? आश्चर्य है !

भोला०—मर गया ? ठीक मालूम है ?

दीना०—मेरे कहनेपर विश्वास नहीं होता ?

भोला०—समझ गया सरस्वती ! यह सुनकर मुझे कष्ट होगा, यही समझकर यह बात तूने नहीं लिखी !—ओः इतनीसी अवस्थामें तुझे पुत्रशोक भी सहना पड़ा बेटी !

दीना०—भाग्यकी बात है !

भोला०—भगवानदासने वेश्या रक्खी है ?

दीना०—हाँ।

भोला०—वेश्या ?

दीना०—समझमें नहीं आता ? मैं तो विशुद्ध हिन्दीमें कह रहा हूँ ! ग्राम्य भाषामें कहूँ ?

भोला०—वेश्या रक्खी है !—क्यों ?

दीना०—लो, इस 'क्यों' का जवाब मैं क्या दूँ !—वेश्याको लोग क्यों रखते हैं !

भोला०—भगवानदास क्या अब सरस्वतीको प्यार नहीं करता ? कहते क्या हो !

दीना०—प्यार क्यों नहीं करता ! तुम्हारी पोती ही तो उस वेश्याका खर्च जुटाती है।

भोला०—सिर फिरा जा रहा है—ठहरो। भगवानदास सरस्वतीको अब प्यार नहीं करता !

दीना०—वैसे ही प्यार करता है, जैसे साँप मेंढ़कको किया करता है।

भोला०—लेकिन पहले तो खूब प्यार करता था !

दीना०—करता होगा।

भोला०—इस बातको मैंने कभी स्वप्नमें भी नहीं सोचा ! सरस्वतीको प्यार किये बिना कोई रह सकता है, यह बात मेरी धारणामें ही नहीं आ सकती। वह तो मेरी सरस्वतीको बहुत प्यार करता था ! सरस्वतीके सिवा और किसीको जानता ही न था ! वह सरस्वतीके नामपर उछल पड़ता था ! यह सब क्या मैंने स्वप्न ही देखा था ! वह क्या मेरा भ्रम ही था ! यह तो मैंने कभी सोचा ही नहीं !

दीना०—पृथ्वीपर ऐसी अनेक बातें होती हैं, जिनके बारेमें पहले कभी कोई नहीं सोचता।

भोला०—(चिन्तित भावसे) वह उसे बहुत चाहता था !—खूब याद है। एक दिन याद आता है,—उस दिन विजयादशमी थी—उस दिन शरद ऋतुके शान्त सन्ध्याकालमें मेरी पोती आमके बागमें एक अमरूदके पेड़की शाखामें दोनों हाथ डाले खड़ी हुई थी; अस्त होते हुए सूर्यकी सुनहली किरणें उसके मुखपर पड़ रही थीं; दूरपर शहनाई बज रही थी; हवासे वृक्षोंके पत्ते हिल रहे थे; भगवानदासने एक गुलाबका फूल तोड़कर हँसते हँसते सरस्वतीके जूड़ेमें लगा दिया था, एक भौंरा एक फूलसे उड़कर दूसरे फूलपर बैठ रहा था और मैं आड़में खड़ा हुआ उस मधुर चित्रको अपने हृदय-पटलपर अंकित कर रहा था। उस दिन तो भगवानदास उसे प्यार करता था !

दीना०—उस समय कौन नहीं प्यार करता ! वह युवकके सामने युवती थी, भूखेके सामने स्वादिष्ट भोजन था !—प्यार न करता !

भोला०—उसके बाद सन्ध्याको दीपक जल जानेपर सरस्वतीने आकर ज्योंही मुझे प्रणाम किया, त्योंही मैंने अपने काँपते हुए हाथोंसे उसे

उठाकर हृदयसे लगा लिया और बारंबार उसके मुखका चुम्बन किया। उसके बाद हँसकर उससे पूछा।—" सरस्वती, बागमें क्या हो रहा था ? " सरस्वतीने हँसकर कहा—" आप शायद छिपे छिपे देख रहे थे ! आप बड़े ऐबी हैं ! "—" आप बड़े ऐबी हैं ! " यह उसने इस तरह कहा—क्या कहूँ दीनानाथ–वह मानों अभीतक मेरे कानोंमें गूँज रहा है।

दीना०—लो, अब प्रेमका इतिहास शुरू हुआ !

भोला०—उसके बाद उस दिन रातको सरस्वती और भगवानदास दोनों मुझसे विदा हुए। विदा करते समय सरस्वतीको जोरसे छातीसे लगाकर मैं चिल्लाकर रो उठा। सरस्वती भी रो उठी।

दीना०—उसका खयाल करके अब सचमुच ही न रोइए।

भोला०—(कुछ प्रकृतिस्थ होकर) उसके बाद मैंने कहा–"सरस्वती, मुझे याद करेगी ? " तब सरस्वतीके मुखमें हँसी और आँखोंमें आँसू थे,—वह बड़ा ही अपूर्व दृश्य था दीनानाथ,—उस समय सरस्वतीने कहा " दादाजी, आपको जब भूलूँगी तब चिट्ठी लिखकर जता दूँगी।" उसके बाद गाड़ीपर चढ़कर दोनों जने चले गये। सरस्वतीने गाड़ीसे मुँह बढ़ाकर कहा–" चिट्ठी लिखिएगा दादाजी ! " गाड़ी चली गई। पृथ्वीने दोनों हाथोंसे मुँह ढँक लिया। उस रात्रिके आकाशमें एक लंबी साँस उठकर लीन हो गई। यह आज तीन सालकी बात होगी।—हाँ, ठीक तीन सालकी।

दीना०—इसको अस्वीकार कौन करता है ?

भोला०—उसके बाद तबसे अबतक उसका वही हँसीसे सुशोभित चेहरा मानों मेरी आँखोंके आगे नाचता रहता है, उसका वह स्वर वायुमंडलमें गूँजा करता है। कितनी ही बड़ी बड़ी रातोंमें मैंने उस मानसी मूर्तिको आँसुओंसे स्नान कराया है। वह तो मानवी नहीं है दीनानाथ !

वह तो देवी है, कविकी कल्पना है, ध्यानकी धारणा है, मानसी प्रतिमा है—इसीसे शायद भगवानदास उसे पकड़ नहीं सका।

दीना०—पकड़ तो खूब सका था;—लेकिन अब उन बातोंको सोचनेसे क्या होगा! कोई उपाय करो।

भोला०—उपाय!—हाँ, उपाय तो अवश्य करना चाहिए! लड़का बिगड़ गया है।—दीनानाथ तुम भोजन कर चुके?

दीना०—हाँ, कर चुका।

भोला०—ऊँहूँ:।—कुछ ठीक उपाय नहीं सूझता।—भवानी-प्रसाद!

दीना०—इस समय आप कोई उचित उपाय कीजिए।

भोला०—हाँ कुछ करूँगा।—सो तो करना ही चाहिए।—कुछ करूँगा।—अजी भवानीप्रसाद!

[भवानीप्रसादका प्रवेश]

भोला०—अजी एक गाना तो गाओ।

दीना०—इस वक्त गाना गाऊँ!

भोला०—मेरे सिरके भीतर न जाने क्या हो रहा है।—हाँ जी—उस वेश्याका चेहरा कैसा है?

दीना०—लो, इतनी देरके बाद आप पूछ रहे हैं कि उसका चेहरा कैसा है!

भोला०—वह देखनेमें मेरी पोतीसे अच्छी है? मेरी पोतीसे बढ़कर उसकी खिंची हुई भौंहें हैं? उससे बढ़कर काली आँखें हैं?—कभी उल्लाससे चमक उठती हैं और कभी जलसे भर आती हैं। उससे बढ़कर मीठी हँसी है?—दोनों लाल लाल ओठ मानों दूध ऐसे दाँतोंसे हर घड़ी हँसा-बोला करते हैं। उससे बढ़कर सुडौल गोल भुजाएँ हैं?—सोनेके

जड़ाऊ गहनों और चूड़ियोंने जैसे उन्हें बड़े आदरसे घेर रक्खा है। उससे बढ़कर कोमल हथेलियाँ हैं ?—चमेली और गुड़हल यहाँ जैसे प्रभुत्वके लिए युद्ध कर रहे हैं। उसका रंग क्या मेरी पोतीके रंगसे भी बढ़कर गुलाबी है—कण्ठका स्वर झंकारमय है—धीमी चाल है—लज्जासे नम्र भङ्गिमा है—काले केश हैं ? आहा, वह गर्दन हिलाती थी, और पासके केश उड़कर प्यारसे उसके मुखको चूमने लगते थे।—

दीना०—लो, अब कविता शुरू हो गई।

भोला०—सबसे अच्छी हैं उसकी दोनों आँखें ! उसका देखना कितनी ही तरहका था।—गाओ भवानीप्रसाद, माताके नामका कोई सुन्दर गीत गाओ।

भवानी०—(गाता है—)

सोहनी, गजल

अब क्यों मुझे, मैया, पुकारो, मैं तुम्हारे पास हूँ।
बस गोद लेकर प्यार कर लो—पुत्र हूँ मैं दास हूँ॥
दोहा। खेल चुका सन्ध्या हुई, दौड़ तुम्हारे पास—
आया हूँ, खोऊँ नहीं तुमको, है यह त्रास॥
मुझको तुम्हारा ही सहारा औरसे मैं क्या कहूँ।
बस गोद लेकर प्यार कर लो०॥
दोहा। धीरे धीरे छा रहा, अन्धकार यह मात।
अभय-बाहुसे घेर लो, होवे नहीं निपात॥
बस मैं तुम्हारे हृदयसे लगकर अभय हो सो रहूँ।
बस गोद लेकर प्यार कर लो०॥
दोहा। पाया अबकी जो तुम्हें, श्यामा, तो मैं आज—
तुम्हें छोड़नेका नहीं, छूटे सभी समाज॥

तेरी शरणको छोड़कर, किसके चरण जाकर गहूँ ?
बस गोद लेकर प्यार कर लो० ॥

(गाते गाते भवानीदासका प्रस्थान)

दीना०—यह क्या भोलानाथजी, तुम तो रोते हो !

भोला०—नहीं। चलो दीनानाथ, जरा टहल आवें।

दीना०—चलो।

(दोनोंका प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

स्थान—मुन्नीके घरका भीतरी हिस्सा

समय—सन्ध्याकाल

[मुन्नी अकेली है]

मुन्नी—आज कुछ भी अच्छा नहीं लगता। जैसे आकाश बदलीसे ढँक रहा है, वैसे ही मेरा मन भी ढँक रहा है। मेरे जीवनका प्रधान काम है, मानों समयको गवाँना। मेरे जीवनका प्रधान सुख है—आप अपनेको भूले रहना। लेकिन फिर भी खाती हूँ, सोती हूँ, हँसती-बोलती हूँ; इस नीच रूपको दर्पणमें देखती हूँ, सँवारती हूँ, सिंगारती हूँ—क्यों ? और कोई काम नहीं है, इस लिए। (लंबी साँस लेती है) एक सूखी नदी, एक ऊसर खेत, एक जीवोंसे खाली वन, एक मुर्दा शरीर हूँ ! (खिड़कीके पास जाकर बाहरकी ओर देखकर) पानी पड़ रहा है, रिम-झिम रिम-झिम वर्षा हो रही है। हवा नहीं है, बिजली नहीं है, मेघ-गर्जन नहीं है। एक मलिन, स्थिर, पंकिल दिन है। मेरे जीवनका चित्र है !—कौन !—उस्तादजी।

[उस्तादजीका प्रवेश]

उस्ताद—हाँ बेटी।

मुन्नी—आदाब, बैठिए उस्तादजी।

उस्ताद—सलाम (बैठकर) मुझको बुलाया था बेटी?

मुन्नी—जी हाँ।

उस्ताद—किस वास्ते?

मुन्नी—उस्तादजी, आप मुझसे नाराज हैं?

उस्ताद—नहीं तो।

मुन्नी—जरूर हैं। इतने दिनोंतक मुझसे मुलाकात भी नहीं की, खबर भी नहीं ली! एक खत भी नहीं भेजा!

उस्ताद—तुम हमारी कौन हो बीबीसाहबा!

मुन्नी—नाराज मत हूजिए!

उस्ताद—हमारे गुस्सा होनेसे तुम्हारा क्या हर्ज हो जायगा?—ऐसा ही दस्तूर है। तुम लोग किसी जवान मर्दके मिलते ही उसपर आशिक हो जाती हो—उसका दम भरने लगती हो। ऐसा ही दस्तूर है—ऐसा ही दस्तूर है (आँखें पोंछना) लेकिन—मिजाजशरीफ?

मुन्नी—आपकी दुआ है।

उस्ताद—वह तुमपर आशिक है?

मुन्नी—कौन?

उस्ताद—वही मर्द।

(मुन्नी सिर झुका लेती है)

उस्ताद—ऐसा ही दस्तूर है। मर्द जवान है।—तुम भी प्यार करती हो?

मुन्नी—अलबत्त! आप क्या समझते हैं, मैं रुपएके वास्ते—

उस्ताद—कभी नहीं। लेकिन उसके बीबी है?

मुन्नी—किसके?

उस्ताद—तुम्हारे खाविंदके, तुम्हारे प्यारेके, तुम्हारी जानके !—उसके बीबी है ?

मुन्नी—(सिर झुकाकर धीमे स्वरसे) है।

उस्ताद—(उठकर) तो जहन्नुममें जाओ। (क्रोधके साथ प्रस्थान)

मुन्नी—(कुछ देर चुप रहकर) समझ गई उस्तादजी ! सच बात है। यह बात नहीं है कि इस बातका खयाल मुझे पहले न आया हो। मैंने सोचा था, प्यारसे—प्रेमसे—सब पवित्र हो जाता है, मिट्टी भी सोना हो जाती है।—लेकिन—नहीं, यही बात कैसे कही जा सकती है !—प्रेम जिसके साथ है; उसीका न्यायसे अधिकार है ! नहीं तो—

गजल

तुम्हें चाहा है, चाहूँगी तुम्हें ही प्रीतिप्रण धारे।
हृदयसे मैं निबाहूँगी तुम्हारे प्रेमको प्यारे॥
तुम्हारे दुःखमें दुखिया, तुम्हारे सुखमें सुख पाती—
रहूँगी और प्रिय तुम भी कभी होना नहीं न्यारे॥
तुम्हारा हास्यसे उज्ज्वल खिलेगा मुख-कमल हरदम।
रहूँगी उसके गौरवकी मनोहर गन्ध विस्तारे॥
घटायें जब घिरीं होंगी गगनतलपर घनी, तब मैं—
तुम्हारे नैनके जलमें बहूँगी, तुमपै सब वारे॥
मिलनमें मैं तुम्हारे ही मिलनके गीत गा-गाकर—
तुम्हारा ही मनोरंजन करूँगी छोड़ सुख सारे॥
विरहमें हो मलिन मुख दुख-भरी सूनी नजरसे मैं—
तुम्हारी राह ताकूँगी, रहूँगी मौन मन मारे॥
नयन खोले हैं ज्योत्स्ना-जागरणमें जो तुम्हारे, तो—
तुम्हारे सुप्त नयनों-साथ मूँदूँगी नयन प्यारे॥
सदा जीवन-मरणमें मैं तुम्हारी ही रहूँगी बस;
मिलूँगी तुमसे हरयक जन्ममें आकर नयन-तारे॥

[भगवानदासका प्रवेश]

मुन्नी—कौन ! बाबूजी ?

भग०—हाँ, मैं हूँ ।

मुन्नी—आओ प्यारे ! (आगे बढ़कर गले लगनेके लिए हाथ बढ़ाती है) आओ प्राणप्यारे !—

भग०—(पीछे हटकर) यह क्या बात है !

मुन्नी—मैं आपको प्यार करती हूँ, यही मेरा अपराध है ! मैं आपको—नहीं मैं अब ' आप ' नहीं कहूँगी । तुम—तुम—तुम ! तुम मेरे प्रियतम हो, तुम मेरे हृदयके हृदय, तुम मेरे जीवनके जीवन हो, तुम मेरे—(भगवानदासको दोनों हाथोंके बीचमें करके) तुम मेरे हो, और किसीके नहीं ।

भग०—यह क्या मामला है !

मुन्नी—ब्याह ?—ब्याह न हो तो प्रेम निषिद्ध है ?—कौन कहता है !—ब्याह ? वह तो रजिस्ट्री कबूलियत लिख देना है—घेरेसे जमीनको घेर लेना है । इतना ही नहीं, जमींदारकी रिआया भी जमीनको छोड़ दे सकती है, बेच सकती है । लेकिन स्त्री—मरते दम तकके लिए खरीदी हुई लौंडी है । चाहे उसका अनादर किया जाय, उसके लातें मारी जायँ, उसे छोड़ दिया जाय—उसे अपने पतिके चरण-कमलोंका ध्यान करते हुए ही मरना होगा ।—यही तो स्त्रीका धर्म बताया गया है ।

भग०—आज ये सब बातें क्यों कह रही हो मुन्नी ।

मुन्नी—यदि प्रेम ब्याहके बिना किया जाय, तो वह वेश्यासक्ति है ! कौन कहता है ?—यही तो प्रेम है । दासभाव नहीं है, विपत्ति नहीं है, जिम्मेदारी नहीं है, भविष्यका अन्देशा नहीं है—एक बाधाहीन

अगाध अस्थिर असीम उच्छ्वास है। आकाशकी तरह खुला हुआ, तीरकी तरह तेज, आँधीकी तरह प्रबल, बिजलीकी तरह ज्वालामय, लहरकी तरह उमड़ा हुआ !—यही तो प्रेम है !—(मस्त हाथीकी तरह झूमने लगती है) प्राणधन ! हृदय, मन, जीवन, यह लोक, परलोक—एक चुम्बनमें हैं !—यही तो प्रेम है ! नहीं तो—

भग०—मुन्नी ! (पास जाकर कन्धेपर हाथ रखता है)

मुन्नी—नहीं तो चाहे रस्सीमें बाँधो, चाहे लोहेकी जंजीरसे बाँधो, चाहे कायदे-कानूनोंसे बाँधो, और चाहे मन्त्र पढ़कर बाँधो—प्रेमहीन सभी बन्धन अपवित्र हैं, बाध्य आलिंगन ही वेश्यासक्ति है ! ना ना, क्या कह रही हूँ ! मैं वेश्या हूँ, वेश्याके घरमें मेरा जन्म हुआ है। मैंने निन्दित धनके लिए अपना शरीर बेच डाला है। मैं क्या व्याहका मर्म समझ सकती हूँ ? मैं समाजकी कूड़ा हूँ; राह राह फिरनेवाली कुतिया हूँ, रोगीका वमन हूँ। व्याहका मर्म मैं क्या समझूँगी ! (फिर दोनों हाथोंसे मस्तक थामकर ऊँचे स्वरसे) वह देश रसातलको चला जाय, जहाँ पहले वेश्याकी सृष्टि हुई थी। उस विधानका सत्यानाश हो, जिससे वेश्या जन्मभर वेश्या है। वे पुरुष नरकको जायँ, जो इस लालसाके भारी अग्निकुंड में घी डालते हैं, जो इन कलंकिनियोंके कुलको बढ़ाते हैं।

भग०—अपनेको सँभालो—स्थिर होओ मुन्नी।

(मुन्नी धीरे धीरे खिड़कीके पास पड़ी हुई एक कुरसीपर जाकर बैठ जाती है और बाहरकी ओर निहारती है)

भग०—आश्चर्य है ! ऐसा तो कभी नहीं देखा। यह क्या सचमुच ही वेश्या है ! (मुन्नीके पास जाकर, पीठपर हाथ रखकर) मुन्नी !

मुन्नी—जाइए !—दिन भी क्या मेरा नहीं है ?

भग०—इसके माने ?

मुन्नी—इसके माने यही हैं कि मैं इस समय कुछ देर अकेली रहना चाहती हूँ। आपसे यही भिक्षा माँगती हूँ।

भग०—क्यों ? मेरे चले जानेसे तुम्हें सुख मिलता है ?

मुन्नी—नहीं। लेकिन आपने कभी इस बातपर लक्ष्य किया है कि पक्षी कभी तो सूर्यके प्रकाशसे उज्ज्वल नीले आकाशमें पंख फैलाकर उड़ता है, मानों वह आहार नहीं जानता, चिन्ता नहीं जानता, विश्राम नहीं जानता, दुःख नहीं जानता; लेकिन वही पक्षी कभी पंख समेट-कर आँखें मूँदकर घोंसलेमें चुपचाप बैठा रहता है, जैसे वह कभी उड़ना जानता ही न था—देखा है क्या ?

भग०—देखा है।

मुन्नी—हम इन्हीं पक्षियोंकी जातिकी हैं। हम जब पिंजड़ेके घेरेमें चोटकी यन्त्रणासे छटपटाती हैं, तब तुम लोग खड़े होकर हँसते हुए उस तमाशेको देखते हो। हम जब मर्मव्यथासे मरती हैं, तब तुम लोग हँसते हो। बाबूजी, हमें देखकर तुम लोगोंको जरा भी दुःख नहीं होता ?

भग०—ना, तुम लोगोंको देखकर हम लोगोंको परम सुख होता है, नहीं तो घर छोड़कर यहाँ आते ही क्यों !

मुन्नी—आज जाइए।

भग०—क्यों ! क्या मैं तुम्हारी आँखोंका काँटा हूँ ?

मुन्नी—तुम मेरे सर्वस्व हो। तुम मेरे (लिपट जाती है और फिर उसी दम जैसे कोई साँपको देखकर पीछे हट जाता है वैसे हट जाती है) ना ना, आप मेरे कोई नहीं हैं—कोई नहीं हैं।

भग०—यह क्या कह रही हो मुन्नी !

मुन्नी—और मैं भी आपकी कोई नहीं हूँ। आज मैं लताकी तरह ऊपर उठकर आपको घेरे हुए हूँ। लेकिन जिस दिन मैं आपको नहीं रुचूँगी, उस दिन आप मेरे हाथोंके इस क्षीण बन्धनको तोड़कर चले जायँगे।

भग०—कौन कहता है!

मुन्नी—मैं जानती हूँ! मैं जानती हूँ!

भग०—कभी नहीं जाऊँगा।

मुन्नी—नहीं जाओगे! सच कहो—नहीं जाओगे! सच कहो—छातीपर हाथ रखकर कहो—तुम मुझे प्यार करते हो? सच? सच?

भग०—हाँ प्यार करता हूँ।

मुन्नी—अपनी स्त्रीसे बढ़कर? अपनेसे बढ़कर? आत्मासे बढ़कर?—जैसे मैं प्यार करती हूँ वैसे?

भग०—हाँ मुन्नी।

(मुन्नी एक लंबी साँस लेती है। दासी दीपक जलाकर लाती है और रखकर चली जाती है।)

भग०—लो रात हो गई। अब एक अच्छासा गाना गाओ।

मुन्नी—आपकी स्त्री देखनेमें कैसी है?

भग०—बहुत सुन्दर है।

मुन्नी—बहुत ही?

भग०—न हो, एक दिन जाकर देख आओ।

मुन्नी—वह आपको प्यार करती है?

भग०—हाँ।

मुन्नी—लेकिन इस तरह?

भग०—किस तरह ?

मुन्नी—मेरी तरह।—जैसे समुद्रकी उत्ताल तरंग ? राहुका ग्रास ? दावानलका आलिंगन ? भूखे बाघका गर्जन ?—मैं जैसे क्रोधसे भरी हुई नागिनकी तरह फन उठाकर—ना ना, भागिए भागिए ! —मैं आपका सर्वनाश हूँ; आपके लिए अभिशाप हूँ; आपके लिए नरक हूँ।—भागिए भागिए।

तीसरा दृश्य

स्थान—मुन्नीके घरके सामनेकी सड़क

समय—चाँदनी रात

[भोलानाथ, भवानीप्रसाद और दीनानाथका प्रवेश]

भोला०—यही घर जान पड़ता है।—क्यों दीनानाथ ?

दीना०—लेकिन तुम्हें उससे क्या मतलब है ! तुम बूढ़े आदमी हो—इस समय—

भोला०—नहीं, मैं एकदफा उसे देखूँगा।

दीना०—देखकर क्या होगा ?

भोला०—देखूँगा, वह कितनी बड़ी सुन्दरी है। नहीं तो मेरी पोतीको छोड़कर—नहीं, मैं एक बार देखूँगा !—भवानीप्रसाद, तुम इतने करुणभावसे सिर क्यों हिला रहे हो !

दीना०—लेकिन—

भोला०—ना ना, मेरी पोतीका इस समयका चेहरा तुमने देखा नहीं दीनानाथ, इसीसे कहते हो। उसके वे गुलाबी गाल राखके समान सफेद पड़ गये हैं। उसकी आँखोंके कोयेंमें मानों किसीने स्याही

पोत दी है। उसके उस सुगोल ललाटमें दाग पड़ गये हैं। उसका मक्खन जैसा शरीर रूखा पड़ गया है। उसके मुखमें अव्यक्त वेदना है। उसकी आँखोंमें दुःस्वप्न है।

दीना०—सो तो समझा; लेकिन इस वेश्याको देखनेसे क्या होगा!

भोला०—वह—वह मुझे देखकर हँस पड़ी—वह मानों किसी कंकाल (हड्डियोंके ढाँचे) की हँसी थी; उसने मुझे 'दादाजी' कहकर पुकारा, वह स्वर मानों एक सूखा व्यंग्य था; उसने मुझे प्रणाम किया, साथ ही उसकी दोनों आँखोंसे आँसुओंकी धारा वह चली; उसने आँचलसे मुँह ढँक लिया। मैंने उससे कहा—मेरे साथ चल। उसने इसका क्या उत्तर दिया, जानते हो?

दीना०—क्या!

भोला०—उसने कहा—"ना दादाजी, आपने मुझे तो जन्म भरके लिए अपने घरसे विदा कर दिया है—अब यह मेरा घर ही मेरे लिए मसान है।" उस समय मैं उससे लिपटकर—बूढ़ा आदमी मैं—चिल्लाकर रो उठा।

दीना०—बस!—बस!—अब यहाँ चिल्लाकर न रो उठना!

भोला०—ना रोनेसे क्या होगा! जब हाथ पैर बाँधकर पानीमें फेंक दिया है, तभी तो उसकी यह दशा हुई है, फिर रोनेसे क्या होगा! —लेकिन मैं एक दफा इस सुन्दरीको अवश्य देखूँगा।

दीना०—इससे क्या होगा?

भोला०—अगर वह मेरी पोतीसे भी बढ़कर सुन्दरी होगी, तो उसे खरीद कर ले जाऊँगा और पूजा-मन्दिरके आलेमें सजाकर बिठा दूँगा।

दीना०—तुम क्या सिड़ी हो गये हो?

भोला०—शायद ।

(भवानीप्रसाद हताश भावसे दीवारपर हाथ टेककर और ऊपरकी ओर देखकर लंबी साँस लेता है ।)

भोला०—दीनानाथ, मैं पागल हो गया हूँ, सत्य ही पागल हो गया हूँ । मैं एक वार—(ऊपरसे मुन्नी खिड़की खोलकर झाँकती है) यही है न ?

दीना०—कहाँ ?

भोला०—वह देखो !

दीना०—हाँ, यही तो जान पड़ती है !

भोला०—देखूँ तो ! (चश्मा लगाकर एकटक उसकी ओर देखना) सुन्दरी है ।—हाँ सुन्दरी है ।—दोनों ओठ वैसे पतले नहीं हैं, लेकिन लालसासे भरे हुए हैं । मुँह गोल और डौल अच्छा है !—सुन्दरी है । दोनों आँखें खिंची हुई नहीं हैं; लेकिन जान पड़ता है कि मुखके ऊपर तर रही हैं । लंबे बाल हैं ।-सुन्दरी है ।—मगर मेरी पोतीके समान नहीं है । वह देखो, हँस रही है ।—बहुत ही अच्छा स्वर है । बुरा नहीं है, लेकिन इस हँसीमें जान नहीं है ।—लो वह फिर हँसी ।—हाँ, स्वर अच्छा है ।

दीना०—बूढ़ा मगन हो गया है ।

भोला०—भवानीप्रसाद, इस बड़ी सड़कपर गाड़ी ठहरी रहेगी । पाँचसौ रुपयेका महीना ।—लेकर एकदम रेलगाड़ी पर ।—काशी ! समझे !—एक वार नशा छूट जाने पर फिर सब ठीक हो जायगा । चलो दीनानाथ । समझे भवानीप्रसाद—पाँचसौ ।

(भोलानाथ और दीनानाथका प्रस्थान)

भवानी०—रंग खूब जमता जा रहा है । कहा नहीं जा सकता, इसके बाद क्या होगा । सुना है, स्त्रीके कारण सुन्द-उपसुन्दमें घोर

युद्ध हुआ था। लेकिन नतदमाद और ददियाससुरका युद्ध पुराणोंमें भी नहीं लिखा। चाहे जो हो, ये सब कुछ न कुछ करते हैं। और मैं?—हल् अक्षरकी आड़ी लकीरकी तरह नीचे पड़ा हुआ हूँ और गाना गाता हूँ—। जगत्के किसी काम नहीं आता है यही शायद !—हाँ। साथमें कौन है?—यह क्या! स्वप्न देख रहा हूँ क्या! (आड़में छिप जाता है।)

[बातें करते करते मुन्नी और हीरा घरका द्वार खोलकर बाहर निकलती हैं।]

हीरा—तो मैं जाती हूँ।

मुन्नी—कहाँ?

हीरा—कोई खास दिशा नहीं है, कोई निर्दिष्ट मार्ग नहीं है।—जिधर चली जाऊँ। तुम्हारी अँगूठी अपने पास रक्खूँगी—लिये जाती हूँ। हो सकेगा तो फिर एक दिन घूमती फिरती इधर आऊँगी।—सोचा था, आत्महत्या करूँगी—मगर अब नहीं करूँगी। घरमें भी प्रवेश नहीं करूँगी।

मुन्नी—क्यों?

हीरा—नहीं। जिस घरको छोड़ दिया, उसमें पैर न रक्खूँगी। उनके पवित्र देव-मंदिरमें प्रवेश करनेका मुझे अधिकार नहीं है। देखा नहीं, मैं तुम्हारे घरके भीतर भी नहीं गई? इसका कारण क्या है, जानती हो?

मुन्नी—क्या कारण है?

हीरा—घरके भीतर जानेसे ही जान पड़ता है कि उसके कोने कोनेसे हजारों नाग फन फैलाकर मेरी ओर झपट रहे हैं; उसकी छत झुक आकर मेरी छातीको दबाये लेती है; साँस नहीं ली जाती।

भवानी०—अभागिन औरत !

हीरा—(चौंककर) यह किसकी आवाज है !—यह कौन है !—यहाँ भूत रहते हैं क्या ! भागूँ—भागूँ ।

(वेगसे प्रस्थान)

भवानी०—पागल है !

मुन्नी—छुटकारा और दास्यभाव, आशा और निराशा, लाभ और सर्वनाश, स्वर्ग और नरक, ये सब मेरे जलते हुए मस्तिष्कके धुएँसे भरे हुए रंगमंचमें हाथ पकड़कर नृत्य कर रहे हैं । (घुटने टेककर हाथ जोड़कर ऊपरकी ओर देखकर)—क्षमा करो । मैं नहीं जानती थी । मैं नहीं जानती थी ।

भवानी०—(आगे बढ़कर) बेटी !

मुन्नी—कौन—कौन हैं आप ?

भवानी०—ब्राह्मण ।

मुन्नी—भिक्षा चाहते हैं ?

भवानी०—नहीं ।

मुन्नी—फिर ?

भवानी०—कुछ कहना है ।

मुन्नी—क्या ! कहिए !

भवानी०—तुम कौन हो बेटी !

मुन्नी—मेरा नाम मुन्नी है—मैं वेश्या हूँ ।

भवानी०—झूठ कह रही हो ?

मुन्नी—नहीं ब्राह्मण !

भवानी०—तो फिर रो क्यों रही थीं ?

मुन्नी—यह पूछकर आप क्या करेंगे ?

भवानी०—तुम्हें क्या दुःख है, मुझसे कहो ।

मुन्नी—वेश्याको क्या दुःख है ? यही आप पूछते हैं !

भवानी०—समझ गया ! तो बेटी, इस दूषित वायुको छोड़कर, मेरे साथ चलो—माताके चन्दन-सुगन्धित मन्दिरमें शान्ति पाओगी ।

मुन्नी—शान्ति पाऊँगी ! ब्राह्मण, तुम क्या पागल हो ?

भवानी०—शायद !

मुन्नी—या मेरी ही समझमें कुछ नहीं आता, मेरा ही दिमाग सही नहीं है ?—शान्ति पाँऊँगी ! मैं ! मेरी शान्ति (पिस्तौल दिखाती है)

भवानी०—(डरकर) यह क्या !

मुन्नी—मुझे अब समय नहीं है । (प्रस्थान)

भवानी०—कौन है यह स्त्री—आश्चर्य ! (जाना चाहता है)

[भगवानदासका प्रवेश]

भवानी०—यही वह लंपट है । देखूँ, क्या करता है ।

भग०—सुखिया ! (द्वारपर धक्का देता है)

[द्वार खोलकर दासीका प्रवेश]

सुखिया—मालकिन घरमें नहीं हैं !

भग०—कहाँ गई ?

सुखिया—माळूम नहीं । (प्रस्थान)

भग०—'माळूम नहीं' के क्या माने !—रातको मुझसे बिना कहे-सुने !—

भवानी०—(आगे बढ़कर) तुम कितना देते हो ?

भग०—तुम कौन हो ?

भवानी०—ब्राह्मण ।—तुम कितना देते हो ?

भग०—चार सौ ।

भवानी०—उसने पाँच सौ लगा दिये हैं ।

भग०—किसने !

भवानी०—एक पके हुए बाल और झुर्रीदार गालवाले कालके कौर पुराने खूसट बूढ़ेने । उसके तीन पन चले गये हैं, एक पन बाकी है, सो उसके होनेमें भी सन्देह है । लेकिन उसके पास रुपए हैं ।

भग०—उसके साथ निकल गई ?

भवानी०—वह तो तुम्हारी व्याहता स्त्री नहीं है कि लात-घूँसे खाकर भी पैरोंपर पड़ी रहेगी । तुम देते हो चार सौ, उसने लगा दिये पाँच सौ !

भग०—अच्छी बात है ! मैं दूँगा छः सौ ।

भवानी०—हाँ, नीलामपर चढ़ा दो । प्रेमको नीलामपर चढ़ा दो । उसके बाद वह सात सौ लगावेगा, तुम आठ सौ लगाना ।

भग०—तुम कौन हो ?

भवानी०—मैं कौन हूँ, यह तुमको पहचान लेना चाहिए था । लेकिन बात यह है कि प्रथम प्रेममें आसपास देखनेकी किसीको फुर्सत ही नहीं मिलती ।—नहीं तो—

भग०—चले जाओ ।

भवानी०—लो जाता हूँ भैया ! मारना नहीं !—

भग०—अच्छा मैं देखे लेता हूँ—वह कैसा है और मैं कैसा हूँ ! मैं छोड़नेवाला नहीं हूँ । देख लूँगा ।

भवानी०—जाओ जाओ—अधःपातमें जाना चाहते हो, तो जाओ। खुद ईश्वर भी तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकते, तब दादाजी तो क्या चीज हैं। जो नष्ट होना चाहता है, वह अवश्य नष्ट होगा। उसे कोई नहीं रोक सकता। लेकिन यह स्त्री—विचित्र है! (प्रस्थान)

[हीराका हाथ पकड़े हुए गौरीनाथका प्रवेश]

गौरी०—आओ, कहता हूँ।

हीरा—छोड़ दो।

गौरी०—घर चलो—सुखसे रक्खूँगा।

हीरा—घर!—नहीं, घर न जाऊँगी। प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ।

गौरी०—धूप, पानी, जाड़ेमें क्यों बेकार—

हीरा—धूप, पानी, जाड़ा दुष्ट पुरुषोंकी संगतिसे कहीं अच्छा है। धूप जब जलाती है—जलाती है; यह नहीं कहती कि मैं गुलाब-जलसे नहला देनेके लिए आई हूँ। जाड़ेके दाँत जब शरीरमें चुभते हैं—सीधे बैठते हैं, उसमें कुछ धोखाधड़ी नहीं है। वर्षा जब होती है—प्रेमालिंगन नहीं करती, सीधे सीधे शत्रुभावसे मुहके ऊपर पटापट पड़ने लगती है!—छोड़ दो।

गौरी०—मेरे साथ आओ।

हीरा—मैं नहीं आऊँगी।—तुम दगाबाज नराधम हो। कहती छोड़ दो, नहीं तो चिल्लाकर शहर भरके लोगोंको यहाँ जमा कर दूँगी। कहती हूँ—छोड़ दो।

गौरी०—मुझे कुछ कहना है।

हीरा—तो यहीं क्यों नहीं कहते!

गौरी०—अच्छा तो इस पेड़के तले ही चलो।

हीरा—अच्छा चलो ।　　　　(दोनोंका प्रस्थान)

[शिवदयाल और कामताप्रसादका प्रवेश]

शिव०—क्योंजी, गौरीनाथ एक औरतके पीछे पीछे गया है न ?

कामता०—हाँ गया है !—वही स्त्री जान पड़ती है ।

शिव०—कौन स्त्री ?

कामता०—वही जो उस दिन एकाएक बागमें आ गई थी ।

शिव०—हाँ ! तो इसके भीतर निश्चय ही कोई गूढ रहस्य है ।—चलो चलो, देखें क्या करता है ।　　　　(दोनोंका प्रस्थान)

[दीनानाथ और भवानीप्रसादका प्रवेश]

दीना०—राजी नहीं हुई ?

भवानी०—नहीं !

दीना०—तुम समझाकर ठीक तौरसे नहीं कह सके ।

भवानी०—हाँ, सो कह तो नहीं सका ।

दीना०—क्यों ?

भवानी०—घबरा गया ?

दीना०—क्यों !

भवानी०—चाँदनीके प्रकाशमें मैंने उसका मलिन मुख देखा । वह घुटने टेककर, हाथ जोड़कर, ऊपरको मुख किये, आँखोंमें आँसू भरे प्रार्थना कर रही थी—"मुझको क्षमा करो"—किससे कहा, सो नहीं मालूम; क्यों कहा, यह भी नहीं जानता। लेकिन मेरी आँखोंमें आँसू आ गये । जान पड़ा, मैंने उसका स्वर पहले कहीं सुना है। अपने वक्तव्यको मैं सिलसिलेवार समझाकर नहीं कह सका ।

दीना०—तुम कुछ नहीं हो—अपदार्थ हो ।

भवानी०—बिलकुल।—उसके बाद भोलानाथजीके नतदमादसे मुलाकात हुई।

दीना०—भगवानदाससे?

भवानी०—हाँ।

दीना०—उसने क्या कहा?

भवानी०—कहा, देख लूँगा।

दीना०—हायरे अभागे! तुझे अपनी चीज नहीं रुचती! लाल साड़ी और क्लियोपेट्रा-फैशनका जूड़ा देखकर ही रीझ जाता है! सधी हुई हँसी और तिरछी चितवनमें मगन हो जाता है! घरकी लक्ष्मीको छोड़कर अलक्ष्मीका आश्रय लेता है। मंगल-दीपकको छोड़कर जुगनू पकड़ने दौड़ता है।—

भवानी०—ऐसी उपमाएँ देनेसे, जान पड़ता है, वह समझ जाता। आप गये क्यों नहीं समझाने?

दीना०—मैं जाकर क्या करता?

भवानी०—उपमाएँ देते।

दीना०—अरे उपमाएँ देनेसे क्या होगा?

भवानी०—यह भी ठीक है!

दीना०—अरे मूर्ख! तू प्रेममें पड़कर नष्ट हो जायगा, अपना और दूसरेका सर्वनाश करेगा। इस नशेके बारेमें तो कुछ कुछ समझ सकता हूँ, लेकिन यह समझमें नहीं आता कि मोल लिये हुए चुम्बन और हृदय-हीन आलिङ्गनमें तुझे क्या सुख मिलता है!—बलिहारी!

भवानी०—बलिहारी!

दीना०—चलो।

भवानी०—चलिए।

(दोनोंका प्रस्थान)

चौथा दृश्य

स्थान—गौरीनाथके घरकी बैठक

समय—रात्रि

[अकेला गौरीनाथ]

गौरी०—वह काम कर चुका।—कैसा भयंकर था! मगर साथ ही कैसा सहज था!—पाप और महापापमें अन्तर—एक सीढ़ी भरका है! पापके राज्यमें भी एक शृंखला—सिलसिला है। नहीं तो वह राज्य चलता ही कैसे! पापके राज्यमें रहना चाहो, तो उसके नियमोंको मानकर चलना होगा! एक जगह खड़े न रह सकोगे। या तो ऊपर उठोगे, या नीचे गिरोगे!—इन दो बातोंमेंसे एक बात होगी ही। उठना चाहोगे, तो शक्तिके बलसे, किये हुए पापोंके भारी बोझको ठेलकर उठना पड़ेगा—यह कठिन है। नीचे गिरना चाहोगे, तो अपने बोझसे ही नीचे उतरते जाओगे। यह अत्यन्त सहज है!—वह क्या है!—ना, उल्लूका शब्द है?—जाने दो। मुर्देकी जीभ नहीं हिलती।—बस!—वह कैसा शब्द है!—कौन?—कहाँ!—

[शिवदयाल वृद्ध, और कालीचरणका प्रवेश]

गौरी०—यह—यह क्या, तुम लोग इतनी रातको!

शिव०—क्या नौसे अधिक बजे होंगे?

गौरी—ना—सो—सो—रात कुछ इतनी अधिक तो नहीं हुई है!

वृद्ध०—यहीं टहलते टहलते इधर चले आये।

गौरी०—सो—सो—अच्छा ही किया।

शिव०—तुम अबतक थे कहाँ ?

गौरी०—कहाँ !—

शिव०—वही पूछता हूँ। थे कहाँ ?

गौरी०—था कहाँ !—

बुद्धू०—उधर जंगलमें झाड़ीके भीतर क्या कर रहे थे !

गौरी०—कहाँ—नहीं—मैं तो—

शिव०—घबड़ाये क्यों जा रहे हो ?

बुद्धू०—अरे, तुम तो काँप रहे हो !

गौरी०—ना। मैं—मैंने तो नहीं किया।

शिव०—क्या नहीं किया ?—कालीचरण, जानते हो न ?

काली०—Where ignorance is bliss it is folly to be wise. (जहाँ अज्ञानताहीमें आनन्द है, वहाँ चतुरता दिखाना मूर्खता है।)

बुद्धू०—हमने देखा है।

गौरी०—क्या देखा है !

(शिवदयाल और बुद्धू ठहाका मारते हैं)

गौरी०—ना ना, मैंने नहीं किया। यह देखो !—यह क्या! हाथोंमें खूनका दाग !—ना, मैंने तो हत्या नहीं की। वह खुद ही पानीमें गिर पड़ी थीं।

(शिवदयाल और बुद्धू फिर जोरसे ठहाका मारते हैं)

गौरी०—यों चिल्लाकर क्यो हँसते हो ?—जाओ यहाँसे—निकलो।

शिव०—चलो बुद्धू

(हँसते हँसते दोनोंका प्रस्थान)

काली०—When ill indeed, dismissing the doctor don't always succeed. (कठिन बीमारीमें वैद्यको धता बतानेसे सफलता नहीं होती)

गौरी०—तुमने भी देखा है ?

काली०—समझ गया गौरीनाथ !—You have sown the wind and shall reap the whirlwind. (तुमने आग खाई है, अंगारे जरूर ही उगलोगे ।)

गौरी०—मैंने तो खून नहीं किया ।

काली०—For the wages of sin is death. (क्योंकि पापका परिणाम मृत्यु ही है ।) (प्रस्थान)

[गौरीनाथ मुँह बाये खड़ा रह जाता है । फिर सहसा दौड़कर बाहर जाते जाते सूखे स्वरसे पुकारता है—]

गौरी०—काली—शिवदयाल—बुद्धू !—सुनो—सुने आओ ।

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—सरस्वतीका घरका आँगन

समय—रात्रि

(सरस्वती अधलेटी है पृथ्वीपर पड़ी हुई ऊपरकी ओर ताक रही है)

सर०—अमावसकी रात है ! आकाश निर्मल है !—ओः ! कैसे उज्ज्वल हैं ये नक्षत्र !—अच्छा, ये कितनी दूरीपर हैं । दादाजीके मुँहसे सुना है, ये एक-एक सूर्य हैं !—इसी समय वे छतपर मेरी गोदमें सिर रखकर पड़े रहते थे; मैं उनके सिरपर हाथ फेरती थी; वे कितने ही देशोंके—युगयुगान्तरोंके—इतिहास, पृथ्वीके जन्मकी कथा, महात्मा लोगोंके जीवन-चरित, ज्योतिर्मण्डलका विवरण मुझे सुनाते थे । मैं उस

मायामय उपन्यासको मन्त्रमुग्धकी तरह चुपचाप सुना करती थी।- माड्म पड़ता है, वे आ गये। ना—यह कौन है?

(मुन्नीका प्रवेश)

सर०—कौन?

मुन्नी—यह क्या! ये मैले फटे कपड़े पहने, रूखे बाल बिखेरे जमीनपर!

सर०—तुम कौन हो?

मुन्नी—यही स्त्री है! यही सती है!—मुखमंडलमें कैसी ज्योति है! मस्तकपर कैसी महिमा झलक रही है! अंगोंमें कैसा लावण्य है! पहाड़के नीचे भरे हुए प्रभात-शोभित सरोवरकी तरह शान्त, स्वच्छ, सुन्दर है। यही सती है! यह भूमिशय्या सेनेका सिंहासन जान पड़ती है, यह इसके सिरपरका आँचल हीरा-जड़े मुकुटके समान जान पड़ता है—यही सती है!

सर०—तुम कौन हो?

मुन्नी—शैतानकी बच्ची! इस देवीके सामने घुटने टेककर हाथ जोड़कर खड़ी हो।—देवी! (घुटने टेककर) देवी!—

सर०—कुछ समझमें नहीं आता।—कौन हो तुम बहिन?

मुन्नी—हाँ—बहिन कहकर पुकारो; मुझे धन्य करो; इस कीचड़से मेरा उद्धार करो—मुझे

सर०—कौन हो तुम?

मुन्नी—इसी रद्दी घरमें तुम रहती हो!

सर०—हाँ।

मुन्नी—मैंने सुना है, तुम्हारे दादा बड़े आदमी हैं।

सर०—हाँ हैं तो। फिर?

मुन्नी—वे तुमको खर्चके लिए रुपये नहीं भेजते ?

सर०—भेजते हैं।

मुन्नी—कितने ?

सर०—महीनेमें पाँच सौ।

मुन्नी—फिर तो!—ओ!—समझ गई! तो इन्हीं रुपयोंसे तुम्हारे पति वेश्याका खर्च चलाते हैं ?

सर०—(चाककर) किसका ?

मुन्नी—उनके एक वेश्या है, तुम नहीं जानतीं ?

सर०—कौन हो तुम! किस साहससे मेरे पास आकर मेरे सामने मेरे पतिकी निन्दा करती हो!—सब झूठ है!—जाओ।

मुन्नी—मुझसे छिपानेसे क्या होगा बहिन! मैं सब हाल जानती हूँ।

सर०—जानती हो, तो जानती रहो। मेरे आगे उसके कहनेकी कोई जरूरत नहीं है।

मुन्नी०—जरूरत है। यह तुम्हारा ही दोष है—

सर०—मेरा ही दोष है!

मुन्नी—हाँ बहिन, तुम्हीं तो अपने पतिकी कामाग्निका ईंधन जुटा रही हो, भ्रष्टबुद्धि पतिको उसकी वेश्याका खर्च देकर उसके सर्वनाशकी राह तुम्हीं तो साफ कर रही हो। अब एक पैसा न देना। पतिको नष्ट होने देना क्या सती-धर्म है? स्त्री धर्मकी साथिन है, अधर्मकी नहीं—

सर०—मैं यह नहीं सुनना चाहती। पतिकी निन्दा सुनना पाप है। जाओ।

मुन्नी—तुम्हें अगर कष्ट होता है, तो मैं कुछ नहीं कहूँगी बहिन! मुझे बहिन कहकर तुमने मेरा साहस बढ़ा दिया है।—अब कुछ नहीं कहूँगी। अच्छा तो अब जाती हूँ बहिन! (जाना चाहती है।)

सर०—बहिन, तुम कहाँ जाती हो! अभी मत जाओ। मैं बड़ी ही दीन और बिलकुल ही अकेली हूँ। मेरे कोई नहीं है। मत जाओ।

मुन्नी—यह क्या कह रही हो बहिन!—तुम्हारे पति तुमको प्यार नहीं करते?

सर०—एक समय था, जब प्यार करते थे।

मुन्नी—और तुम?

सर०—मैं भी प्यार करती थी! पुरुष अगर जवानीकी पहली उमंगमें एक मुग्धा सरला विह्वला बालाके पैरोंपर आत्मसमर्पण कर दे, तो जगत्में ऐसी कितनी बालिकाएँ हैं जो प्यार किये बिना रह सकें? और हम लोगोंका तो ब्याह हुआ था। इसलिए प्रेममें कोई बाधा भी नहीं थी; उन्हें प्यार करनेके सिवाय कोई उपाय नहीं था।

मुन्नी—उसके बाद?

सर०—उसके बाद—

मुन्नी—कहो बहिन। उसके बाद?

सर०—उसके बाद जिस दिन देखा कि वे अपनी बूढ़ी माको छोड़कर मेरी उपसना कर रहे हैं, उस दिन पहले पहल मुझे डर माल्म हुआ!—तब जान पड़ा—यह तो प्रेम नहीं है; प्रेम तो कर्त्तव्यको भुलाता नहीं सिखाता है। यह तो एक तरहकी आसक्ति है, जिसका अन्त अच्छा नहीं हो सकता।

मुन्नी—तुम झूठ नहीं कहतीं बहिन।

सर०—मुझे डर माल्म हुआ।—उसी भयसे शिथिलतासी आ गई! अपने जीवनके भविष्यको सोचकर काँप उठी! अब भी याद आता है—ओः!

मुन्नी—उसके बाद !

सर०—उसके बाद भोजन न मिलनेसे और सेवा-चिकित्सा न होनेसे मेरा बच्चा मर गया। संसारमें सब ओर मेरे लिए अन्धकार हो गया। लेकिन उस अन्धकारमें भी मैंने राह खोज ली। जीवनकी सब आशाओंको सतीके कर्तव्य-पालनमें लगा दिया। मनको दृढ़ किया;—प्रतिज्ञा की कि भाग्यमें चाहे जो हो—पतिको और प्यार कर सकूँ या न कर सकूँ, जन्मभर पतिके प्रति स्त्रीके कर्त्तव्यका—सतीधर्मका—पालन किये जाऊँगी। इस समय उसी ओर लक्ष्य करके चल रही हूँ।

मुन्नी—सरस्वती ! बहिन ! तुम मानवी नहीं देवी हो !—

सर०—उसके बाद और सुनना चाहती हो ?—

मुन्नी—ना, और सब तो मैं जानती हूँ !

सर०—जानती हो ?—कुछ नहीं जानती हो !—जानती हो ?—सामने विराट् प्रेमका एक अमृत-सागर भरा पड़ा है, लेकिन प्याससे मेरी छाती फटी जा रही है। जानती हो कि मेरा वर्तमान जैसा अन्धकारमय है, भविष्य भी वैसा ही अन्धकारमय है—उस अन्धकारमें नक्षत्र नहीं हैं, बिजली नहीं है, जुगनूका भी प्रकाश नहीं है ! जानती हो कि दिनोंदिन तपेदिकके रोगीकी तरह मेरे भीतरका सब कुछ क्षयको प्राप्त हो रहा है ! जानती हो क्या !—ना तुम क्या जानोगी ! तुम क्या जानोगी !

मुन्नी—(हाथ पकड़कर) जानती हूँ बहिन !—मैं तुमसे भी अधिक दुखिया हूँ। तुम तो कर्त्तव्यका पालन किये जा रही हो; लेकिन मैं तो अपने कर्त्तव्यको भी नहीं खोज पाती हूँ।

सर०—कौन हो तुम !—तुम्हारा हृदय इतना दयार्द्र है, स्पर्श इतना कोमल है, और स्वर इतना गद्गद है !—कौन हो

तुम ! मैंने तुम्हारे सामने अपने हृदयका द्वार खोल दिया—जो अब तक किसीके सामने नहीं खोला था !—कौन हो तुम जादूगरनी ! तुमने मेरी गूढ़ व्यथाको मेरा हृदय निंचोड़कर बाहर निकाल लिया ! अब तक तो यह बात मैंने कभी किसीके आगे नहीं कही थी—तुम्हारे आगे ही क्यों कह दी !—क्यों कह दी !

मुन्नी—बहिन जो कुछ कहा है, उसके लिए तुमको कभी पछतावा न करना पड़ेगा। भगवान्से प्रार्थना करती हूँ कि तुमको फिर गिरिस्तीका सुख मिले। जिसके कारण तुम्हारा सब गया है, वह तुम्हारे पतिको तुम्हें फेर देगी !

सर०—परन्तु वह तो वेश्या है—

मुन्नी—वेश्या होनेसे ही उसे घृणाकी दृष्टिसे मत देखो। इस बातको मत भूल जाना बहिन, कि अनेक पुरुष वेश्याओंसे भी अधम होते हैं। (जाना चाहती है, फिर लौटती है) उस वेश्याको तुमने देखा है ?

सर०—नहीं।

मुन्नी—तो लो देखो, वह अभागिन—तुम्हारे सामने ही है। (छाती पीटकर) यही मुन्नी वेश्या है ! (तेजीसे प्रस्थान)

[सरस्वती एकटक उधर ही देखती रह जाती है। दूसरी ओरसे लड़खड़ाते हुए भगवानदासका प्रवेश]

भग०—मैं उसे देख लूँगा ! पाजी !—एक बार जरूर देखूँगा।—कौन ! ओ तुम हो !

सर०—हाँ मैं हूँ !

भग०—हटकर खड़ी होओ !

(सरस्वती किवाड़ पकड़कर खड़ी रहती है)

भग०—हटकर खड़ी होओ ! मेरी छाँह न छूना—



सर०—क्यों ! मैं क्या कोई आफत हूँ ?

भग०—तुम मेरी—　　(विकट शब्द करके लेट रहता है)

सर०—आज क्या तबीयत अच्छी नहीं है ?

भग०—(उठकर) कहता हूँ, यहाँ बैठकर मिनमिन मत करो। मेरी तबीयत खराब हो जाती है। तुमको देखकर मुझे बुखार चढ आता है।

सर०—यहाँ तक ! ओः—अब नहीं सहा जाता।

भग०—' नहीं सहा जाता ! ' यहाँ अगर गुजर न हो, तो अपने बापके घर चली जाओ।

सर०—यहाँ अगर गुजर न हो !—मैं क्या तुम्हारी दासी हूँ या वेश्या, जो यहाँ अगर न गुजर हो, तो और जगह चली जाऊँ ? मैं क्या रोटियोंके लिए तुम्हारे घर पड़ी हूँ ?

भग०—तो !—

सर०—हाय रे भाग्य !—मैं अपने लिए यहाँ नहीं पड़ी हूँ, तुम्हारे लिए पड़ी हूँ। यह घर—टूटा-फूटा हो, जला हो—जैसे तुम्हारा है, वैसे ही मेरा भी है ! यद्यपि यह उजड़ी हुई हाट है—फिर भी मेरा ही है। अपना घर अपनी गिरिस्ती छोड़कर कहाँ जाऊँगी ! अपने पतिको सर्वनाशके निकट खड़े देखकर ऐसी कोन हिंदू सती होगी, जो छोड़कर चली जायगी !

भग०—ओहो ! वाहरी सती !

सर०—देखो, मैं सती हूँ या असती, इसका निर्णय मैं एक शराबीके मुखसे, एक वेश्यागामीके मुखसे, नहीं सुनना चाहती। मेरा सतीत्व मेरा धर्म है—तुम्हारा नहीं।

भग०—तुम्हारा धर्म है !

सर०—हाँ मेरा धर्म है। उस देवताकी पूजाके तुम तो केवल पुष्प-पत्र हो ! फिर भी तुम्हारी पवित्रता चाहती हूँ इस कारणसे कि जिसमें वह पुष्प-पत्र मेरे देवताके चरणोंमें चढ़ाने लायक हो—जिसमें वह अपवित्र स्थानमें पड़कर कलुषित न हो।

भग०—और अगर कलुषित ही हो !

सर०—तो मैं अपने आँसुओंके जलसे धोकर उसे पवित्र कर दूँगी ! जाने रहो, कि सतीके आँसुओंसे बढ़कर पवित्र गंगाजल भी नहीं है !

भग०—हिश्—जाओ, मैं तुम्हारा व्याख्यान नहीं सुनना चाहता।

सर०—तो क्या चाहते हो ?

भग०—रुपया।—रुपया निकालो।—अब मैं उसे महीनेमें छः सौ रुपए दूँगा ! देखूँ, वह कहाँ तक देता है।

सर०—उसे महीनेमें छःसौ रुपये देना चाहो, छःसौ दो, हजार रुपये देना चाहो, हजार दो, कौन रोकता है; परन्तु खुद पैदा करके दो।—अब मैं न दूँगी।

भग०—तुम न दोगी, तुम्हारे पुरखे देंगे !—नहीं तो मैंने व्याह ही क्यों किया था !

सर०—मेरे पुरखोंको तारनेके लिए ! मैं अब न दूँगी। खुद उपास करके तुम्हारी कामकी आगमें घी डालनेके लिए अब एक पैसा भी न दूँगी !—छःसौ रुपए तो बहुत होते हैं !

भग०—नहीं दोगी ?

सर०—नहीं। अब मैं समझ रही हूँ कि दादाजीके पाससे रुपए लाकर और तुम्हें देकर मैं तुम्हारे सर्वनाशका मार्ग साफ़ कर रही हूँ—अब न दूँगी।

भग०—नहीं दोगी ? कहता हूँ, दो। (धक्का देता है)

सर०—अब एक पैसा भी नहीं।

भग०—अच्छा देखता हूँ। (भीतर जाकर पिस्तौल ले आता है) नहीं दोगी ?—कहता हूँ, रुपए दो! नहीं तो!—

सर०—मार डालो। बड़ा अच्छा होगा। आत्महत्याके पापहीसे बच जाऊँगी।

भग०—कहता हूँ, दे दे! बतला, कहाँ रक्खे हैं।

सर०—कभी नहीं बतलाऊँगी।

भग०—नहीं बतलायगी, तो—(पिस्तौल दिखाकर), देखती है!

सर०—मार डालो।

भग०—तो मरो। (पिस्तौल तानता है)

[वेगसे मुन्नीका प्रवेश]

मुन्नी—(पिस्तौल तानकर) खबरदार!

भग०—(पिस्तौल हाथसे गिर पड़ती है) कौन हो तुम!

मुन्नी—मैं हूँ मुन्नी!

भग०—ओ! तू है!—हटकर खड़ी हो!

मुन्नी—नरकके कीड़े! तुम इस सतीको—इस देवीको, यन्त्रणा देकर, भूखे रखकर, मार-पीटकर, मेरा खर्च जुटाते हो!—जरा देखो, इस धूलमें लथपथ, रूखे बाल बिखेरे, मलिन हड्डियोंके ढाँचेको देखो। जरा देखो–अरे ओ कामके गुलाम, देखो तुमने यह क्या किया है!—अगर मनुष्य हो, तो घुटने टेककर इस सतीसे क्षमा-प्रार्थना करो। अगर यह क्षमा कर दे, तो समझो कि तुम बड़े भाग्यशाली हो।

भग०—लुच्ची! मेरी ही रकम खाती है और मुझसे ही जबान लड़ाती है। (पिस्तौल उठा लेता है)

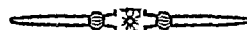
मुन्नी—तुम्हारी रकम ! कहते तो सुनो ! शर्म नहीं आती ? तुम्हारी स्त्रीका दान—तुम्हारा यह रुपया—अब तुम्हें देनेके लिए मैंने ही इन्हें मना कर दिया है। तुम्हारा रुपया ?—मैं नहीं जानती थी कि तुम ये रुपए भीख माँगकर, स्त्रीका रक्त चूसकर, अपना मनुष्यत्व वेचकर, डाकुओंसे भी अधम होकर हथियाते हो और मुझे देते हो। मैं तुम्हारे रुपयोंको लात मारती हूँ। मैं तुमसे घृणा करती हूँ।

भग०—तो यह सब तेरी ही कारस्तानी है ! अच्छा तो ले, अब मैं तुझे ही मारूँगा !

मुन्नी—क्या ! मुझे ही मारोगे ?—देखो, मेरे हाथमें भी पिस्तौल है, तुममें और मुझमें अगर पिस्तौलका युद्ध हो, तो तुम्हारा गिरना निश्चित है। इसमें रत्ती भर भी सन्देह नहीं है। जी चाहता है, एक बार युद्ध कर डालूँ—पाजी पुरुष और वेश्या स्त्रीका युद्ध हो जाय। जगत् देखे कि किसकी जीत होती है। ना, मैं तुम्हें नहीं मारूँगी। तुम्हारे छुटकारेकी राह है, तुम लंपटसे महर्षि हो सकते हो। लेकिन वेश्या—सदा वेश्या है। तुमको मैं पछतानेका समय देती हूँ। यह लो, (पिस्तौल फेंक देती है) मुझको मार डालो। दुनियाके पर्देपरसे मुन्नीका नाम मिट जाय।—यह लो, मैं छाती आगे बढ़ाये देती हूँ।

भग०—तो मर। (पिस्तौल दाग देता है)

(मुन्नी जमीनपर गिर पड़ती है और नौकर तथा पड़ोसी आ जाते हैं।)



चौथा अंक

पहला दृश्य

स्थान—एक सजा हुआ कमरा

समय—रात्रि

(भगवानदास और उसके इष्टमित्र बैठे हैं। सामने नाचना-गाना हो रहा है।)

आनन्द भैरवी—ठेका धमार।

सुखमा सुखद सोहत आज।
मुनिनके मन मोहि लीन्हें, कामको है राज ॥ सुख० ॥
मधुर मोहन छन्द मधुमय, मधुरगन्ध विराज।
चलत धीमी वायु छायो चहुँ दिसि ऋतुराज ॥ सु० ॥
पत्र-पुंज निकुंज महँ नव-मंजरीके संग।
करि रहे क्रीड़ा, नचत ज्यों पाय प्रेम-प्रसंग ॥ सु० ॥
स्निग्ध सौरभ शिशिर-सिक्त प्रसूनके हैं ढेर।
सब जगतके हास्यकी है राशि ज्यों चहुँ फेर ॥ सु० ॥
हरित विकसत घने पल्लव नवल शोभाधाम।
करत हियमहँ अंकुरित शिवको जरायो काम ॥ सु० ॥
झरत झरने शत-तरंग, तरंगिणीके रंग।
चन्द्र-कर-उज्ज्वल विमलजल देखि होत उमंग ॥ सु० ॥
स्वप्नमय अधरातमहँ जब स्तब्ध सब संसार—
करत कलधुनि कोकिला पंचम सुरन उच्चार ॥ सु० ॥
मधुर तान महान बंसीकी सुनाई देत।
चढ़ि गगन लौं गूँजि रसिकनके हृदय हरि लेत ॥ सु० ॥
मुग्ध तारागन मधुर यह दृश्य देखत हर्षि।
चन्द्र किरननसों रह्यो ज्यों अमृतधारा वर्षि ॥ सु० ॥
मगन चन्द्रहिं हिय लगाय अनन्द हिय न समात।
मूँदि दृग सोवत शिथिल-सी अलस-विह्वल रात ॥ सु० ॥

भग०—वाहवा ! वाहवा ! खूब ! कैसी खूबीसे नीचे गिरता जा रहा हूँ ! वहा जा रहा हूँ ! जरासा धक्का भी नहीं लगता—मानो पैराश्यूट डीसेंट ! Parachute descent

नन्दकिशोर—जानते हो, कहाँ जा रहे हो ?

भग०—जानता हूँ ! चूल्हेमें !—चूल्हा जगह कैसी है, कुछ जानते हो नन्दकिशोर ?

नन्द०—खूब गर्म जगह है ।

भग०—गर्म ! हाँ गर्म ! बड़ी गर्म ! लेकिन—नहीं, और एक गिलास दो ।

भैरोंनाथ—अब न पियो ।

भग०—न पियूँ ? यह क्या कहते हो भैरोंनाथ, शराब न पियूँ ? पियूँगा ! दो ! रोको मत ! रोकनेसे ही गड़बड़ होती है ! बीचमें आकर धक्का न देना ! गिर रहा हूँ, गिर जाने दो ! अन्तको—जानता हूँ—बड़ा विकट धक्का लगेगा ! उस धक्केमें—बस—सब चूरचूर हो जायगा ! मगर इस समय पिलाते जाओ ।

देवीदास—रतन !

भग०—चुप ! रोको नहीं ।

देवी०—अब न पीना ।

भग०—पीता हूँ !—तुम्हें इससे मतलब ! क्या मैं तुम्हारे बापकी दौलतसे शराब पीता हूँ ? फिर तुम रोकनेवाले कौन ? जिसकी शराब पीता हूँ वह—नन्दकिशोर अगर रोके तो बस, फिर न पियूँगा ! और—यहाँ आऊँगा भी नहीं ! जहाँ मुफ्तकी शराब पाऊँगा, वहीं जाऊँगा ! तुम सब कौन हो ?—

शरत्—नाराज क्यों होते हो भाई ! हम तुम्हारे अच्छेहीके लिए कहते हैं ? अब और हजम न होगी ।

भग०—हो जायगी। हज़म हो जायगी। शराब पियूँगा। जब तक सो न जाऊँ, अचेत न हो जाऊँ, मिट्टीके ढेलेकी तरह अटल न हो जाऊँ, तबतक पियूँगा।

नन्द०—भाई, तुम्हारे ही लिए कहते हैं—

भग०—क्या तुम भी! बस बाबा, जाता हूँ। तुम लोगोंके साथ बस यही आखिरी—　　　　(उठना)

नन्द०—कहाँ जाते हो? बैठो। नहीं मानते, तो पियो शराब! परन्तु जाना नहीं!

भग०—अब राहपर आये! नन्दकिशोर, तुम बड़े धर्मात्मा हो। तुम मेरे सच्चे मित्र हो। दो शराब। (लेकर पीता है।) उसका चेहरा बड़ा ही सुन्दर था; लेकिन उसकी आवाज़—नन्दकिशोर, लाओ शराब।

नन्द०—देता हूँ! यह लो (शराब देता है); लेकिन सोचकर देख लो। मैं तुमसे स्नेह रखता हूँ, इसीसे कहता हूँ! अपना सर्वनाश मत करो! पृथ्वीपर ये सब चीजें संभोगके लिए बनी हैं। लेकिन इनका सेवन उचित मात्रासे ही करना चाहिए। अमृत भी अगर अधिक पियो, तो वह भी पेटमें जाकर विष हो जाता है।

भग०—क्या तुमने यह नहीं सुना है—'विषस्य विषमौषधम्!'—लाओ शराब।　　　　(मद्यपान)

नन्द०—बस यह आखिरी गिलास है। लेकिन अब न पीओगे। हम लोग तुमसे स्नेह रखते हैं, इसीसे कहते हैं।

भग०—तुम लोग मुझसे स्नेह रखते हो? नन्दकिशोर, तुम मुझे चाहते हो?

नन्द०—हाँ चाहता हूँ।

भग०—मुझमें ऐसा कौनसा गुण है?

नन्द०—तुम्हारा हृदय महत् और उदार है !

भग०—मेरा हृदय महत् है ! तुम मुझे जानते नहीं, इसीसे ऐसा कहते हो। (खड़े होकर) नन्दकिशोर—तुम लोग मेरी तरफ देखो ! देखते हो ? क्या देखते हो ?

नन्द०—कहाँ ! कुछ तो नहीं।

भग०—फिर देखो ! क्या देखते हो ?

शरत्०—तुमको—

भग०—मैं कौन हूँ ?

शरत्०—रतनलाल—

भग०—झूठ है। तुम मुझे नहीं पहिचानते।

शरत्०—क्यों ?

भग०—देवी बाबू, तुम मुझे देखते हो ?

देवी०—देखता हूँ।

भग०—कौन हूँ मैं ?

देवी०—रतनलाल—

भग०—नहीं।

देवी०—तो फिर ?

भग०—मैं हूँ एक पिशाच !—शराब क्यों पीता हूँ, जानते हो ?

देवी०—जानता हूँ।

भग०—कुछ नहीं जानते ! हाः हाः हाः—इस जगह—हाथ लगाओ ! (नन्दकिशोरका हाथ ले जाकर अपने कलेजेपर रखता है।) देखते हो !

नन्द०—देखता हूँ।

भग०—धड़क रहा है न ? तेजीसे ! आँधीकी तरह प्रबल वेगसे ! ध्वंसकी तरह भयङ्कर गतिसे ! देखते हो ? देखते हो नन्दकिशोर !

नन्द०—देखता हूँ।

भग०—बीते पापके लिए पश्चात्ताप, और भविष्य दण्डके लिए भय इन दोनोंने मिलकर मेरे जीवनको शैतानका कारखाना बना डाला है, यह जानते हो ? पीछेकी ओर देखकर काँप उठता हूँ, सामनेकी ओर देखकर काँप उठता हूँ। उसके ऊपर—उः ! तुम नहीं जानते, मेरे जीमें कैसा खटका समाया है।—वह क्या है ! ! !

देवी०—क्या ?

भग०—मा ! मा !—इस—इस तरह क्यों मेरी ओर देख रही हो ! वह मुर्देका मुख—वे खुले हुए ओंठ—वह स्थिर पत्थरकी ऐसी मूर्ति, वह एकटक फीकी दृष्टि—मा–मा, इस तरह न देखो, इस तरह न देखो। बल्कि शाप दे दो—शाप दे दो !

देवी०—यह क्या बक रहे हो !—किससे बातें कर रहे हो ?

भग०—मा ! मा !—मैं—ऐं—ऐं—

नन्द०—रतनलाल !—(भगवानदासका हाथ पकड़कर हिलाता है।)

भग०—ओ—ओ—(मूर्छित हो जाता है।)

(सब घबड़ाकर उसकी सेवा करने लगते हैं।)

नन्द०—रतन ! रतन !

भग०—(उठकर) कौन रतन ?—ओ ! मैं !—ना—अब नहीं रहा जाता। तो प्रकट कर दूँ। बन्धुओ, मेरा नाम रतन नहीं है, मेरा नाम है भगवानदास—जिसने स्त्रीके लिए माताको छोड़ दिया; वेश्याके लिए स्त्रीको छोड़ दिया; प्रतिहिंसाके कारण वेश्याकी हत्या की—

देवी०—यह तुम क्या कह रहे हो रतन !

भग०—कहाँ ? क्या कह रहा हूँ ? हाँ—ना, सब गलत है। मैंने कुछ नहीं किया। मैं पापी नहीं हूँ। मैं परम पुण्यात्मा हूँ। माकी पूजा करता था। स्त्रीको प्यार करता था। वेश्या कभी रक्खी नहीं। जो कहा था, सब गलत है !

देवी०—क्या कह रहे हो ?

भग०—मैं शिक्षित मनुष्य हूँ। अच्छा—सज्जन—हो सकता था, अगर पहलेकी सी मातापर भक्ति रहती ! मेरी माको मुझे लौटा ला दो, मेरी माको लौटा ला दो, वह पहला पाप धो दो—फिर सब पा सकता हूँ।

नन्द०—क्या कह रहे हो ?—तुम्हारा नाम भगवानदास है ?

भग०—ना—ना—गलत कह रहा हूँ। मैं सोऊँगा।

[नौकरका प्रवेश]

नौकर—बाबूजी !

नन्द०—क्या !

नौकर—पुलिस आई है !

नन्द०—पुलिस !—क्यों आई है, जाकर पूछ।

(नौकरका प्रस्थान)

नन्द०—एकाएक इतनी रातको पुलिस ? बागमें ?

देवी०—रतनके मुँहकी ओर तुम लोग जरा देखो—एकदम जर्द पड़ गया है।

भैरों०—देखो, वह इश्वर ही देख रहा है !

सुखराम—नन्दकिशोरजी, तुम्हारी दावतमें आकर अन्तको गवाही न देनी पड़े।

नन्द०—रतन ! रतन !

[नौकरका प्रवेश]

नौकर—दारोगा साहेब पूछते हैं कि यहाँ भगवानदास नामका कोई आदमी है। लीजिए, वे आ ही गये।—

भग०—अरे पकड़ लिया !—(भागना)

नन्द०—रतन ! रतन ! (पीछे जाना; और लोग भी पीछे पीछे जाते हैं।)

[दो सिपाहियोंके साथ दारोगाका प्रवेश)

दारोगा—कहाँ ! यहाँ तो कोई नहीं है ! वहाँपर इतनी गड़वड़ काहेकी है ? देखूँ—(जानेको उद्यत होता है।)

[भगवानदासके सिवा और सबका प्रवेश]

भैरों०—छतपरसे फाँद पड़ा।

सुख०—उठते ही भागा—

दारोगा—कौन ?

भैरों०—रतन।

दारोगा०—रतन या भगवानदास ?

नन्द०—हाँ, शायद यही नाम उसने कहा था।

भैरों०—तुमने देखा कि भागा था ?

सुख०—हाँ, अपनी आँखोंसे देखा।

भैरों०—हाथ पैर नहीं टूटे ?

सुख०—ना। छत परसे पीपलके पेड़पर जाकर उलटता-पलटता नीचे जाकर गिरा ! उसके बाद उसी दम उठकर भागा।

दारोगा—किधर !

सुख०—पश्चिमकी तरफ।

दारो०—महावीरसिंह ! जाओ—पीछा करो।

(एक-सिपाहीका प्रस्थान)

दारोगा—जनाव, माफ कीजिएगा, मैं जरा आपके घरकी तलाशी लेना चाहता हूँ।

नन्द०—क्यों दारोगा साहब, मामला क्या है ?

दारोगा—विशेष कुछ नहीं। भगवानदासके विरुद्ध हत्याके अपराधमें गिरफ्तारीका वारंट है। आप अनुमति दें, तो मैं घरकी तलाशी लूँ। शायद किसी जगह वह छिपा रक्खा गया हो।

नन्द०—दारोगा साहब, मैं आनरेरी मजिस्ट्रेट हूँ।

दारोगा०—माफ कीजिएगा। मुझे अपने कर्त्तव्यका पालन करना ही होगा। आप तो सब जानते हैं।

नन्द०—तो आइए। तलाश करके देख लीजिए।

(सब जाते हैं)

दूसरा दृश्य

स्थान—भोलानाथके घरका बाग

समय—सन्ध्या

[सरस्वतीके सामने तोतेका पिंजड़ा रक्खा है। वह उसे पढ़ा रही है। भोलानाथ टहल रहे हैं।]

भोला०—सरस्वती, एक बात कहूँगा!

सर०—एक क्यों! दस बातें सुना दीजिए न।

भोला०—तेरा चेहरा सदा क्यों उदास रहता है?

सर०—इतनीसी बात कहनेके लिए इतनी बड़ी भूमिका! इस बातमें तो मैं कुछ नयापन नहीं देखती। दो महीनेसे बराबर आप यही बात कह रहे हैं।

भोला०—क्या कहनेकी मुझे साध है! तू सदा सोचा करती है। चल, गाड़ीपर बैठकर जरा मैदानकी हवा खा आवें।

सर०—ना दादाजी, मेरा जानेको जी नहीं चाहता।

भोला०—तो यहाँ तू इस तरह मुँह लटकाकर न बैठने पावेगी।

सर०—(हँसकर) कहाँ मुँह लटकाये मैं बैठी रहती हूँ दादाजी!

भोला०—मगर तुझे ही दोष किस तरह दूँ?—जिसका स्वामी हत्या करके भागा हुआ है!—यह भी तेरे नसीबमें था!

सर०—वे इस समय अज्ञातवास कर रहे हैं। मालूम पड़ता है, आपने पाण्डवोंकी कथा नहीं सुनी। आः! मैं आपको कहाँतक सिखाऊँ, आप तो कुछ भी नहीं जानते।

भोला०—जिस दिन सुना, भगवानदासने तुझे लातसे मारा, उस दिन ऐसा मालूम पड़ा—क्या कहूँ सरस्वती ऐसा—मालूम पड़ा कि यह हरी-भरी शस्य-श्यामला पृथ्वी मेरे सामने ही सूखकर, सिकुड़कर फलकी तरह शून्यमें झड़ पड़ी और नीचेसे नरक उछल पड़ा, और फिर शैतानोंका दल व्याहको टिटकारी देकर हँसने लगा।—ओः!

सर०—दादाजी, आप यह क्या कहते हैं! पतिकी लात पतिव्रताकी छातीमें–कौस्तुभ मणि क्या चीज है—मुझे ठीक ऐसा जान पड़ा, जैसे स्वर्गसे कल्पवृक्षके फलोंकी वर्षा हो रही है।

भोला०—यह क्या सरस्वती!

सर०—प्रेमके गूढ़ तत्त्वको आप कहाँसे जानते?

भोला०—सो क्या!—तुम दोनोंमें प्रेम हुआ था?

सर०—प्रेम! ओः! दादाजी, आपसे क्या कहूँ कैसा प्रेम हुआ था!—बहुत विकट प्रेम!

भोला०—कैसा?

सर०—हम दोनों अपने प्रेमका शुमार नहीं कर पाते थे, अन्त नहीं पाते थे। पूरी तौरसे—क्या कहूँ दादाजी—प्रेमके चक्करमें पड़-कर—अकसर खाना-पीना भी न होता था। बिना भोजनके ही दिन बीत जाता था।

भोला०—तो फिर क्या होता रहता था?

सर०—बैठे बैठे उपमाएँ दिया करते थे।

भोला०—क्या उपमाएँ देते थे ? नमूनेके तौरपर एकाध बता तो सही।

सर०—देखिए, वे कहते थे, तू मेरे गलेका हार है; मैं कहती थी, मैं तुम्हारे पैरोंकी जूती हूँ।

भोला०—ओः! मुझे जान पड़ता है—तू व्यंग्य कर रही है—सच तो यह है कि तुम दोनोंमें प्रेम कभी हुआ ही नहीं—

सर०—क्यों ?

भोला०—क्या यही प्रेम है! इसे तो प्रेम नहीं कहते।

सर०—तो फिर किसे प्रेम कहते हैं ? कहिए न दादाजी, प्रेम किसे कहते हैं!

भोला०—सुनेगी, यही मान ले—तेरा किसीके साथ प्रेम हुआ है। —मान ले।

सर०—अच्छा मान लिया—यद्यपि उसे मान लेना बहुत कठिन है। खैर, तर्कके लिए मान लिया। उसके बाद ?

भोला०—लेकिन तूने उसे देखा नहीं, उसका नाम भी नहीं सुना —तो भी प्रेम होगा ?

सर०—सो किस तरह होगा ?

भोला०—किस तरह होगा, यह नहीं जानता। लेकिन होगा जरूर। कविताकी भाषामें इसे पूर्वानुराग कहते हैं।

सर०—(विस्मयके साथ) अच्छा!

भोला०—उसके बाद एक दिन—किसी सुलग्नमें, शुभ घड़ीमें, हारसिंगारके फूलोंकी महकसे मनोहर हवाके झोंकोंमें, किसी स्वप्नमय संध्यामें, किसी निभृत निस्तब्ध निकुंज-वनमें—दोनोंकी चार आँखें होना और चार आँखें होते ही प्रेमकी उत्पत्ति।

सर०—चार आँखें होते ही उत्पत्ति !

भोला०—हाँ, चार आँखें होते ही प्रेमका होना—याद रखना, अब मैं यहाँसे नाटककी भाषामें वार्तालाप करूँगा।

सर०—अच्छा। उसके बाद ?

भोला०—उसके बाद प्रेमिककी स्वगतोक्ति; प्रेमिकाका व्याकुलभाव दिखाना; प्रेमिकका कवितायें याद करना और प्रेमिकाका पतन या मूर्च्छा।

सर०—उसके बाद ?

भोला०—सखीका प्रवेश—सब विरहिणियोंके पास कमसे कम एक सखी रहनी चाहिए, नहीं तो प्रेम नहीं हो सकता।—

सर०—नहीं तो शायद प्रेम नहीं हो सकता ?

भोला०—(सिर हिलाकर) होनेकी कोई सूरत ही नहीं है। सखी न होगी, तो वह गान किसके आगे गावेगी ? और गानके बिना प्रेम जमता ही नहीं।

सर०—हाँ।—उसके बाद ?

भोला०—सखीका प्रवेश और पंखा करना। प्रेमिकाका होशमें आना और धीरे धीरे चले जाना! जाते जाते प्रेमिकाकी साड़ीका पेड़की डालीमें उलझ जाना और उसको सुलझानेके बहाने प्रेमिकको लौटकर देखना! प्रेमिकाका लंबी साँस छोड़ना और प्रेमिकका—' हा हतोऽस्मि ' कहकर पछाड़ खाना। प्रेमिकाका प्रस्थान और प्रेमिकका—प्रेमिकका क्या ?

सर०—मैं क्या जानूँ! वर्णन तो आप कर रहे हैं।

भोला०—ठीक है! लेकिन इस जगहपर क्या होना चाहिए—कुछ नहीं सूझता। कुछ मेल नहीं खाता! तू ही न मेल मिला दे बेटी!

प्रेमिकका ?—बोल। जल्दी बोल। नहीं तो प्रेम ठंडा हुआ जाता है। हाँ प्रेमिकका ?

सर०—प्रेमिकका घर जाकर खूब, पेटभरकर रोटी खाना और फिर प्रेमके पीछे पड़ जाना।

भोला०—आः! सब मिट्टी कर दिया!

सर०—क्यों ?

भोला०—यही एक रोटी खानेसे सब मिट्टी हो गया! मेरा इतना परिश्रम वृथा ही गया। अन्तको रोटी खाना! आः छिः!

सर०—तो फिर क्या खाना ?—पूरी ?

भोला०—खाना बिल्कुल नहीं। निराहार निर्जल रहना।

सर०—ऊँहुः। खाली पेट प्रेम नहीं होता। यह बड़े कड़े परिश्रमका काम है। रोटी न खाकर पूरी खा सकते हैं लेकिन खाना जरूर चाहिए!—अच्छा, उसके बाद ?

भोला०—ठहर जा, पहले विषयको फिर खींच खाँचकर खड़ा कर लूँ।—इस रोटी खानेकी बातने मुझे एकदम बेदम कर दिया है। जरा सँभाल लूँ—ठहर जा।

सर०—सँभाल लीजिए। कुछ जल्दी नहीं है।

भोला०—(सँभालकर और फिर उठकर) कहाँ तक कह चुका!—हाँ, उसके बाद प्रेमिकका प्रस्थान। उसके बाद एक दिन आँधी उठना, प्रेमिकका नाव न पाना, नदीमें कूद पड़ना, नदी पार होकर उसी दम दौड़ते जाकर प्रेमिकाकी दीवारपर चढ़कर भीतर फाँद पड़ना।

सर०—ऊँहुः! ठीक नहीं हुआ!—कुछ छूट गया।

भोला०—क्या ?

सर०—मुर्दा और साँप।

भोला०—तुझे कुछ शऊर नहीं है—तू अकवि है। नहीं तो क्या इस प्रेमके बीचमें मुर्दा और साँप ले आती।

सर०—मैं क्यों ले आई ? भक्तमाल ग्रन्थमें—बिल्वमंगलकी कथामें मौजूद ही है।—अच्छा उसके बाद !

भोला०—उसके बाद और क्या ! प्रेमिक और प्रेमिकाकी भेट। प्रेमिकाका लज्जाका भाव प्रकट करना। फिर सखीका प्रवेश। उसके बाद दोनोंका गुप्तरूपसे व्याह। परस्तानका दृश्य और यवनिका पतन।

सर०—यह क्या ! यहींपर प्रेमका अन्त हो जायगा ?

भोला०—अन्त नहीं तो और क्या होगा ! व्याह हो गया। और क्या चाहती है ?

सर०—उसके बाद और कुछ नहीं ?

भोला०—और क्या ?

सर०—ऊँहूः ! ठीक नहीं हुआ। उसके बाद क्या हुआ, सो क्या मैं बतलाऊँ ?

भोला०—अच्छा, तू ही बतला !

सर०—उसके बाद प्रेमिकाका ससुराल जाना। प्रेयसीका रसोई बनाना, भंडारेसे सीधा निकालना, प्राणनाथका रोटी खाना और आफिस जाना।

भोला०—यह बात किसी नाटककार कविने नहीं लिखी।

सर०—इतनी सत्य बातको काव्य बर्दाश्त नहीं कर सकता। जहाँ असल और सत्य बात शुरू होती है, वहीं पर नाटकका अन्त हो जाता है।

भोला०—हाः हाः हाः ! अच्छा, उसके बाद ?

सर०—उसके बाद दम्पतिके यथासमय पुत्र-कन्या होना।

भोला०—परन्तु अब नाटककी भाषा नहीं रही। तू आप ही कह चुकी है कि यहाँपर नाटकका अन्त हो जाता है।

सर०—अच्छी बात है ! तो अब यहाँसे प्रचलित भाषामें कहूँगी। उसके बाद 'पुं' नरकसे त्राण (रक्षा) करनेके लिए पुत्र-रत्नने आकर दर्शन दिये। अब क्या पूछना है ! उस पुत्रकी सेवा और लालन-पालनमें माताको न सोनेकी सुध है और न खानेकी सुध है। माकी जरा आँख लगी, इतनेमें बच्चेने जरा ' एँ एँ ' किया, माकी आँख खुल गई, वह चट बच्चेको छातीसे लगाकर—" ओ—ओ—ओ—मेरा लाल, मेरा बच्चा ! ओ—ओ—ओ—आरे चंदा " करने लगी।

भोला०—तू ठीक कहती है।

सर०—लड़का जरा बड़ा हुआ, तो गोदसे गर्दनपर चढ़ने लगा। बुखार है—डाक्टरको बुलाओ। पाठशालासे लड़का 'क' लिखकर घर आया, तो घरमें माता मिठाई और जल लिये दासीकी तरह हाजिर है। रातको लड़केने कहा अम्मा, बड़ी गर्मी है, माता पंखा लेकर डुलानेके लिए दौड़ी। माता उस लड़केके लिए कितने ही बड़े दिन बिना कुछ खाये-पिये, कितनी ही बड़ी रातें बिना आँख लगाये, बिता देती है। मरते दम तक माताके मुखमें पुत्रकी बातोंके सिवा और बात नहीं रहती, ध्यानमें और चिन्ता नहीं रहती। वह सोतेमें और स्वप्न नहीं देखती। लड़का लड़का लड़का ! मरनेके बाद मुँहमें लुकुआ लगावेगा कि नहीं ! यह क्या छोटी बात है ! एकदिन माताकी गोद खाली करके, उसकी छाती तोड़कर, उसके जीवनको सूना बनाकर, वही लड़का, इतने यत्न—इतने प्यार—इतने स्नेहको तुच्छ करके न-जाने कहाँ चला जाता है। फिर वह देख नहीं पड़ता।

भोला०—तू तो फिर वही बात करने लगी !

सर०—ना दादाजी ! मैं चुप हूँ !—आहा वह चेहरा ! कैसे टुकुर टुकुर मेरी ओर देखता था। वे दोनों छोटे छोटे हाथ—वे नन्हीं नन्हीं उँगलियाँ !—अगर आप देखते दादाजी !—जैसे मोमका पुतला था।

भोला०—वह पुण्यात्मा स्वर्गको गया। लेकिन तेरा पुत्र—मेरी पोतीका पुत्र—अन्तको दारिद्र्यके कोड़े खाकर, आहारके बिना—

सर०—यह क्या! आप रो रहे हैं दादाजी! इतना समझाया बुझाया, पर मैं आपको सुधार नहीं सकी!—उधर देखिए, केलेके पेड़ोंपर सूर्यकी किरणें आकर पड़ रही हैं। जैसे सन्ध्याकी जय-पताका फहरा रही है।

भोला०—मैं तुझे इतना प्यार करता हूँ; फिर भी तूने यह बात पत्रमें लिखकर मुझे जताई क्यों नहीं सरस्वती!

सर०—फिर वही बात!—अच्छा दादाजी, काव्योंमें प्रेमीका प्रेममें मूर्च्छित होना लिखा है। सो क्या बात है, क्या सत्य ही प्रेममें मूर्च्छा आती है?

भोला०—कहाँतक बहलावेगी बेटी! और मैं भी कहाँतक टालूँगा! यह शोक कहीं टाला या बहलाया जा सकता है!—यह गेरूके झरनेकी तरह पत्थरको फोड़कर बाहर आ रहा है। आ बेटी, इससे यह अच्छा होगा कि हम दोनों रोवें, एक साथ चिल्लाकर रोवें और वह हमारा रोना आकाशमें जाकर किनारेसे टकराई हुई सागरकी लहरकी तरह दयामयके चरणोंतक पहुँचे। देखूँ, उन्हें दया आती है कि नहीं।

सर०—रोऊँ क्यों दादाजी! भगवानने जो दिया है उसे सिर झुकाकर स्वीकार करूँगी।

भोला०—यह तुझसे हो सकेगा?

सर०—क्यों न हो सकेगा! भवानी दादाने मुझे ईश्वरका भजन सिखा दिया है। उन्होंने कहा है कि भगवान जिसपर बहुत कृपा करते हैं, उसीको दुःख देते हैं। दुःख देकर अपने हृदयसे लगा लेते हैं—और भी अपना लेते हैं। वह देखो, भवानी दादा गा रहे हैं। क्यों?

भोला०—हाँ चुप होकर सुन।

(नेपथ्यमें भवानीप्रसादका गीत)

बार बार जो दुःख दिया करते हो भारी।
सो है सारी कृपा तुम्हारी, हे दुखहारी॥

भोला०—रुक क्यों गये!—गाओ भवानीप्रसाद!—वह! गाते गाते उस ओर चले गये।—भवानी! भवानी!—तू यहाँ ठहर। मैं बुला लाऊँ। (प्रस्थान)

सर०—बादल आँसू बन कर बरस गये।—ईश्वर! क्षमा करो। मैं अबोध बच्ची हूँ। इस संसारमें आकर खिलौनोंका खेल कर रही हूँ। मैं ही क्यों, सभी यही कर रहे हैं। बच्चेका खिलौना खिलौना है। माताका खिलौना बच्चा है। जवानका खिलौना धन है। बूढ़ेका खिलौना यश है। ये सभी खेल एक दिन खतम हो जायँगे।—वह चन्द्रमा निकल रहा है। वह तालाबके पानीमें चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब झिलमिला रहा है। कोयल बोल रही है। कैसी सुंदर यह पृथ्वी है! इसे तो कोई छीन नहीं ले जा सकता।—

(टहल टहलकर गाती है)

गीत

ठुमरी—पँजाबी ठेका

दो दिनका है खेल, अरे क्यों मूरख मन भटकावे।
नींद छोड़कर, आँख खोलकर, नहीं सँभलने पावे।
इधर उधर देखते देखते अवसर बीता जावे॥ दो०॥
आशामें ऊपर उठता है, गिरता है, फिर धावे।
हँसता, रोता, महल कामनाओंका रचे, गिरावे॥ दो०॥
बेच-खरीद न सकती कुछ भी, मेला यह उठ जावे।
दोनों हाथ मले मुफलिस मन, क्यों पीछे पछतावे॥ दो०॥
जीव जगतमें जो कुछ सुख-दुख समय समयपर पावे
जीवन-मरण-विधाताका है खेल; वृथा घबरावे॥ दो०॥

—कैसी सुंदर हवा चल रही है।

[छद्मवेषी भगवानदासका प्रवेश]

भग०—सरस्वती !

सर०—(चौंककर) कौन !—ओ !—तुम !—यहाँ !—इस तरह !—इस वेषमें !

भग०—पुलिस मेरा पीछा कर रही है। इसीसे मैं दीवार फाँदकर यहाँ आया हूँ। क्या मुझे आश्रय दोगी !—

सर०—इतने दिनों कहाँ थे ?

भग०—गढ़ोंमें, मसानोंमें, जंगलोंमें, बीहड़ रास्तोंमें फिरता रहा हूँ कभी वैरागी, कभी कुली, कभी नाम बदलकर भला आदमी बना हूँ अन्तको तुम्हारे पास आश्रयकी भिक्षा माँगने आया हूँ।—दोगी ?

सर०—ओः ! (पसीना पोंछती है) दूँगी—तुम चाहे जैसे हो मेरे पति हो। मैं स्त्रीका कर्त्तव्य कर जाऊँगी।—आओ। मैं तुम्हें आश्रय दूँगी।

[भोलानाथका फिर प्रवेश]

भोला०—सरस्वती ! वह भवानी—(चौंककर) अरे यह कौन ?

(सरस्वती लज्जाके मारे दोनों हाथोंसे मुँह ढँक लेती है)

भोला०—(आश्चर्यसे) भगवानदास है क्या ?

भग०—हाँ दादाजी—

भोला०—चुप रह ! मैं खूनीका दादा नहीं हूँ। यहाँ क्यों आया है ?

भग०—आश्रयकी भीख माँगनेके लिए।

भोला०—हूँ !—हिम्मत तो कम नहीं है ! निकल यहाँसे।

सर०—दादाजी !

भोला०—चुप सरस्वती !—(भगवानदासकी ओर उँगली उठाकर) जो व्यक्ति नारीकी हत्या करनेवाला है, यहाँ उसके लिए जगह नहीं है।—निकल यहाँसे।

सर०—(हाथ जोड़कर घुटने टेककर) दादाजी !

भोला०—सरस्वती, समझता हूँ। सब समझता हूँ। लेकिन यहाँ लुका-चोरी न चलेगी। मैं सदा सीधी राहसे चलता आया हूँ। इस समय स्नेहके वश होकर टेढ़ी राह नहीं चढ़ूँगा। मेरा घर हत्यारोंका अड्डा नहीं है।—निकल लीचातक!—तेरा मुँह भी देखकर प्राय-श्चित्त करना चाहिए। निकल!

सर०—(उठकर) तो फिर मुझे भी विदा कर दीजिए दादाजी!

भोला०—यह क्या!

सर०—वे चाहे जैसे हों परन्तु मेरे पति हैं।

भोला०—ओ!—समझ गया!—अच्छी बात है।—बेटी, तूने सोचा होगा कि तुझे मैं प्राणोंसे भी बढ़कर चाहता हूँ, इस कारण तेरे लिए कर्त्तव्यकी राह छोड़ दूँगा। परन्तु इसकी कल्पना भी नहीं करना। कर्त्तव्यके लिए मैंने बहुत कुछ छोड़ दिया है। तुझे छोड़ना पड़ेगा, तो तुझे भी छोड़ दूँगा। यद्यपि तुझे छोड़नेमें मेरी छाती फट जायगी; सब अंग शिथिल हो जायँगे, शायद पागल भी हो जाऊँगा; लेकिन—जबतक जियूँगा अपना कर्त्तव्य किये जाऊँगा। अपराधीको—विशेषकर हत्याकारीको—न्यायके हाथसे नहीं बचाऊँगा। न्यायकी आँखोंमें धूल न डालूँगा।—जा बेटी, मैं तुझे भी विदा करता हूँ।

भग०—इसकी जरूरत नहीं है। मैं खुद जाता हूँ। खुद विप-त्तिकी लहरोंमें पड़कर डूब रहा हूँ—तीको भी उसी आवर्त्तके बीचमें क्यों खींच लाऊँ।—मैं पुलिसको आत्मसमर्पण कर दूँगा।

सर०—ठहरो, मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी। जहाँ तुम्हारा स्थान है, वहीं मेरा स्थान है; वह चाहे पेड़के नीचे हो, चाहे जेलखानेमें हो, और चाहे वध्यभूमिमें हो। तुम यदि आज मुझे ऐश्वर्यके गर्वसे गर्वित

होकर लेने या ग्रहण करने आते, तो मैं उधर ध्यान भी न देती; लेकिन आज तुम दीन भिक्षुक निराश्रय हो !—दादाजी, तो आज्ञा दीजिए ।

भोला०—अच्छी बात है ! अगर जा सके तो जा सरस्वती !—आँखो ! अगर आँसू गिराओगी, तो तुम्हें निकालकर फेक दूँगा ! अन्धा तो यों भी हो जाऊँगा, पहलेहीसे सही । जा सरस्वती—गलेमें क्या रुँवासा आता है—जा सरस्वती । मुझे छोड़कर हत्याकारीके साथ जा ।

सर०—दादाजी—

भोला०—सरस्वती इधर देख, ये सफेद बाल—जिनके ऊपरसे साठ बरसका आँधी-पानी निकल गया है । इधर देख-यह चंचल वक्ष—जिसके भीतर एक स्नेहका सागर लहरा रहा है । इधर देख—यह वृद्धा मरनेके किनारे—ना । जा सरस्वती ।

सर०—एक ओर स्नेह है, और दूसरी ओर कर्तव्य है—

(अदृश्यभावसे भगवानदासका प्रस्थान)

भोला०—जा सरस्वती ! खड़ी क्यों है ! मुझे छोड़कर जा सके, तो जा । देख, मैं खड़ा खड़ा तेरा जाना देख सकता हूँ या नहीं ।—आँखो ! फिर !—ना, निकालकर फेक दूँगा। (आँखें निकालनेको उद्यत होता है ।)

सर०—यह क्या ! यह क्या ! दादाजी ! (हाथ पकड़ती है) आप करते क्या हैं ! करते क्या हैं ! (घुटने टेककर) दादाजी !

भोला०—जा सरस्वती !

सर०— (फिरकर) मेरे पति कहाँ हैं ?—चले गये !

भोला०—गया ?

सर०—(कुछ देर चुप रह कर) दादाजी, आपने मेरे पतिको आश्रय नहीं दिया !

भोला०—हरएक व्यक्तिको यही उचित है कि हत्याकारीको न्यायके हाथमें सौंप दे। मैंने उसे केवल यहाँसे भगा दिया। जब मैंने उस अधमके हाथमें तुझे सौंप दिया था, तभी क्या मैंने उसे अपना सर्वस्व नहीं सौंप दिया था? अपना हृदय निकालकर उसे नहीं दे दिया था?—लेकिन मेरी सरस्वतीको उसने लात मारी—उसने स्त्रीकी हत्या की—ना, यहाँ हत्याकारीके लिए स्थान नहीं है।

सर०—वह हत्याकारी अगर आपका बेटा होता?

भोला०—उसे भी इसी तरह त्याग देता।

तीसरा दृश्य

स्थान—अदालत

समय—तीसरा पहर

[अपने अपने स्थानोंपर जूरी, वकील-बैरिस्टर और जज बैठे हैं। दूरपर भगवानदास और दर्शक लोग उपस्थित हैं। वकील अपनी बहस कर रहा है]

वकील—जूरर महाशयो, इस समय आसामीके विरुद्ध प्रमाण यह है कि आसामीके साथ वेश्याकी कहा-सुनी हुई; उसके बाद ही एक पिस्तौलकी आवाज सुनाई पड़ी, बादको आसामीके नौकरों और पड़ोसियोंने उस घरमें प्रवेश करके देखा कि मुन्नीकी खूनसे लथपथ लाश जमीनपर पड़ी हुई है। आसामीकी स्त्री कुछ दूरीपर मूर्छित अवस्थामें पड़ी हुई है, और आसामी पिस्तौल हाथमें लिये खड़ा है। लोगोंको देखते ही आसामी पिस्तौल फेंककर भाग खड़ा हुआ। ये सब बातें आसामीके नौकरों और पड़ोसियोंकी गवाहीसे प्रमाणित हो गई हैं। पुलिसमें खबर भेजी गई। उसने आकर देखा, तो वहाँ लाश नहीं है! इसी बीचमें निश्चय वह लाश किसीने वहाँसे हटा दी। किसने हटा दी, यह बेशक अभी-

तक साबित नहीं हुआ । लेकिन यह साबित हो चुका है कि इसी समय एक किरायेकी गाड़ी उस घरसे मुन्नीके घरकी तरफ गई थी। दस दिन बाद वही लाश मुन्नीके घरके कुएँमें अधसड़ी अवस्थामें पाई गई । यह लाश मुन्नीहीकी थी, इसका प्रमाण यह है कि उस लाशकी उँगलीमें एक अँगूठी थी; जिसमें मुन्नीका नाम खुदा हुआ है ।—

यह जरूर है कि आसामीकी स्त्रीने इस बारेमें आसामीके खिलाफ गवाही नहीं दी । मगर कौन हिन्दू जातिकी सती स्त्री अपने स्वामीके विरुद्ध गवाही देगी ?—

तभीसे आसामी भागा हुआ था । यह भी उसके खिलाफ सुबूतमें कहा गया है ।

पिस्तौल आसामीका ही है, यह बात शिनाख्त की जा चुकी है ।—

अब इससे बढ़कर सन्तोषजनक और प्रमाण क्या हो सकता है ?— इन बातोंपर विचार करनेसे स्पष्ट कहा जा सकता है कि इस मुन्नीकी हत्याका जिम्मेदार यही आसामी है । जिस कमरेमें हत्या हुई, वहाँ उस समय आसामी, आसामीकी स्त्री और इस लाशके सिवा और किसीको किसीने देखा नहीं । अतएव यह हत्या—या तो आसामीने की है, और या आसामीकी स्त्रीने की है । लेकिन आसामीकी स्त्री हत्या करेगी, क्या यह संभव है ? मुन्नीका झगड़ा आसामीसे हुआ था, आसामीकी स्त्रीके साथ नहीं । इसके सिवा हत्या करके स्वामीके हाथमें पिस्तौल देकर क्या कोई कभी मूर्च्छित हो जा सकता है ! और आसामीकी स्त्री अगर हत्या करती, तो आसामी क्यों छिपकर भागा भागा फिरता !

इस लिए जूरर महोदयो, इस हत्याके सम्बन्धमें जहाँतक सम्भव था, प्रमाण पाये गये हैं । अब आप लोग विचार करें । अगर आसामीके अपराधके सम्बन्धमें कोई संगत सन्देह हो, तो आसामीको

निर्दोष प्रमाणित करना होगा। और अगर सन्देह न हो, तो आसामीको हत्याके अपराधमें अपराधी समझना ही होगा; इसके सिवाय और कोई मार्ग नहीं है। हत्याके अपराधका दण्ड फाँसी तक हो सकता है। इन्हीं सब बातोंको सोच-समझकर आप विचार करें। (बैठ जाता है)

जज—आसामी भगवानदास, तुमको कुछ कहना है ?

भग०—धर्मावतार, मैं निरपराध हूँ।

जज—सो तो पहले ही कह चुके हो ! और कुछ कहना है ?

भग०—धर्मावतार, यदि मुझसे अपराध बन ही पड़ा हो, तो मुझे मृत्युका दण्ड न दीजिएगा। मैं अभी जवान हूँ। पृथ्वी मेरे लिए अभी-तक नई चीज है। अब भी संसारमें आशा है, देहमें शक्ति है, मनमें बल है। मैं पापी हूँ, पापका प्रायश्चित करनेके लिए अवकाश दीजिए। मरनेसे मैं बहुत डरता हूँ।

जज—अदालतमें इस प्रकारकी प्रार्थना बेकार है। न्याय तरवारकी तरह पैना, कठिन और निर्मम है। तुम अगर निर्दोष हो, तो वह तुमको छूएगा नहीं—बल्कि सम्मान करेगा। लेकिन जो तुम अपराधी हो, तो वह 'होनी' की तरह कठोर है—दया नहीं करता। प्रमाणके सम्बन्धमें तुम्हें कुछ कहना है ?

भग०—मैंने हत्या नहीं की।

जज०—तो किसने हत्या की ?

भग०—मेरी स्त्रीने ! (भगवानदासको अन्तरिक्षमें मानों कोई यह कहता हुआ सुन पड़ा—'सावधान !') यह क्या ! किसकी आवाज है !—ईश्वर ईश्वर !—रक्षा करो—रक्षा करो ! (फिर 'सावधान' का शब्द सुन पड़ता है) ना, ना, निरपराधिनी सतीको इस मामलेमें नहीं फँसाऊँगा !—ना धर्मावतार ! मेरी स्त्रीने हत्या नहीं की—लेकिन—लेकिन—मरनेसे मैं बहुत डरता हूँ—मरनेसे मैं बहुत डरता हूँ !—मैंने हत्या नहीं की।

जज—किसने हत्या की है ? सच कहो, किसने हत्या की है ?

भग०—मेरी स्त्री—

[दर्शकोंकी भीड़ फाड़कर सरस्वतीका प्रवेश]

सर०—सच है धर्मावतार !—हत्या मेरे पतिने नहीं की, मैंने की है ।

जज—तुम कौन हो ?

सर०—मैं आसामीकी स्त्री हूँ—

सब लोग—आसामीकी स्त्री !

सर०—हाँ, मुन्नी मेरे पतिकी वेश्या थी । उसी डाहके मारे मैंने उसे मार डाला । हत्या करते ही मैं खौफसे बेहोश होकर गिर पड़ी । जान पड़ता है, उस समय मेरे पतिने छिपा देनेके अभिप्रायसे पिस्तौल उठा लिया होगा ।

(वकील गर्दन हिलाता है)

सर०—वकीलसाहब, मेरी बातपर अविश्वास करनेका कारण क्या है ? आपहीकी युक्ति है कि हत्या या तो आसामीने की है, या आसामीकी स्त्रीने । मेरे पति अस्वीकार कर ही रहे हैं । मैं स्वीकार करती हूँ ।

जज—अबतक यह बात क्यों नहीं प्रकट की ?

सर०—प्राणके भयसे । लेकिन जब देखा कि एक निरपराधको फाँसी हो रही है, तब मुझसे नहीं रहा गया ।

जज—(वकीलसे) What do you say ? (आप क्या कहते हैं ?)

वकील—I do think that the matter requires further enquiry, specially as the prisoner denies his guilt and this lady corroborates him. (मैं समझता हूँ, इस मामलेकी और भी

जाँच होनी चाहिए। क्योंकि आसामी अपराध करना अस्वीकार करता है और यह महिला उसका समर्थन करती है।)

जज—Very well; Officer, of the court you may arrest this wo—I mean lady (बेहतर है, न्यायालयके कर्मचारी, इस औरत— इस महिलाको गिरफ्तार कर लो।)

कर्मचारी—As your worship pleases. (सरस्वतीसे) मैं आपको आपकी स्वीकृतिके अनुसार गिरफ्तार करता हूँ।

सर०—कीजिए।

(यों कहकर बाँधनेके लिए अपना हाथ बढ़ा देती है। उस समय उसका सिर और भी ऊँचा हो जाता है। उसके सिरपरसे दुपट्टेका आँचल खिसक जाता है। सब लोग सहसा उठकर उसकी ओर भक्तिपूर्ण विस्मयके भावसे ताकने लगते हैं।)

चौथा दृश्य

स्थान—भोलानाथका घर

समय—सबेरा

[भोलानाथ, प्रेमशंकर और दीनानाथ]

भोला०—रुपए चाहिए, रुपए चाहिए, जिस तरहसे हो।

प्रेम०—सो तो मैं देख रहा हूँ, लेकिन रुपए आवें कहाँसे !— तब तो जो कुछ था, वह दोनों हाथों लुटा दिया।

भोला०—लुटा तो दिया—ठीक है। लेकिन रुपए चाहिए।

प्रेम०—जिसने उधार माँगा, आपने दे दिया। देकर फिर कभी पाया नहीं। उसको पिताकी 'गया' करनी है, इसको कन्याका व्याह करना है, किसीको महाजनके चुंगलसे छुड़ाना है—तब तो सबकी मुसीबत आपने अपने सिर ले लीं—अब !

भोला०—इस समय मुझपर विपत्ति पड़ी है, वे लोग क्या सहायता नहीं करेंगे—मेरी मुसीबतमें शरीक न होंगे ?

दीना०—भोलानाथ, तुम मनुष्यको नहीं पहचानते ! इसीसे उपकारका बदला पानेकी आशा करते हो !

भोला०—जब उपकार किये थे, तब यह नहीं सोचा था कि इनका बदला पाऊँगा । आज पहले पहल यह खयाल मनमें पैदा हुआ है । वे नहीं देंगे ? इस विपत्तिके समय उनमेंसे कोई दस हजार रुपया उधार न देगा ?

प्रेम०—माँगकर देखिए न !

भोला०—कहते क्या हो प्रेमशङ्कर ! जगतमें प्रत्युपकार नहीं है ? उपकारका बदला—

दीना०—गाली-गलौज—इतनेहीमें अगर वह चुप रह जाय, तो गनीमत समझो ।

भोला०—क्यों ?

दीना०—मनुष्य अधम है !—जितना दो उतना ही माँगता है । जितना उपकार करो, उतना ही मानो तुम उसका उपकार करनेके लिए बाध्य हो । अगर न कर सकोगे, तो गालियाँ सुननेको मिलेंगी !

भोला०—मनुष्य इतना नीच है !—ना ना । यह नहीं हो सकता । यह नहीं हो सकता ।

प्रेम०—वह देखो, उन्हींमेंसे एक आदमी, सिरपर छाता लगाये जा रहे हैं । पुकारूँ ?—जरा माँगकर देखिए न । ओ कामताप्रसाद !

कामता०—(नेपथ्यमें) क्या है ?

प्रेम०—जरा इधर आइए तो।

कामता०—(नेपथ्यमें) बड़ी जरूरतसे जा रहा हूँ।

प्रेम ०—सिर्फ दो मिनटके लिए।

कामता०—(नेपथ्यमें) आः!

दीना०—वह आ रहा है! लेकिन मुखका भाव देखा!

[कामताप्रसादका प्रवेश]

कामता०—क्या कहते हो!—मुझे फुरसत नहीं है।

प्रेम०—चाहनेसे फुरसत हो सकती है; न चाहनेसे नहीं। एक दिन था जब तुम हत्या दिये पड़े रहते थे।

भोला०—सचमुच फुरसत नहीं है?

कामता०—जी हाँ!

भोला०—सच?

कामता०—सच।

भोला०—अच्छा—जाओ।

(कामताप्रसाद जाना चाहता है)

प्रेम०—ठहरो। तुम्हारा अधिक समय नहीं नष्ट करूँगा। याद है, आपने दादाजीसे पाँच हजार रुपए उधार लिये थे?

कामता०—कहाँ?—नहीं तो।

प्रेम०—लेकिन आपने रुपए लिये थे।

कामता०—कुछ लिखा पढ़ी है?

प्रेम०—शायद नहीं है! मूर्ख दादाजीने लिखाया नहीं था। तो भी आपने रुपए लिये थे?

कामता०—किसी जन्ममें नहीं।

प्रेम०—अजी इसी जन्ममें।

कामता०—ना।—मुझे अब समय नहीं है। (जाना चाहता है)

भोला०—तुम्हें मेरा कुछ नहीं देना है भैया। मुझे तुम्हारा देना है।

कामता०—(घूमकर) सो हो सकता है। सो हो सकता है।—कितने रुपए ?—ठीक याद नहीं पड़ती।—अनेक कामोंमें लगे रहना पड़ता है, याद भी नहीं रहता।—कितने रुपए देना हैं ?

भोला०—सो तो नहीं माल्म। मगर यह जानता हूँ कि मनुष्यके निकट मनुष्य अवश्य ही ऋणी है भैया।—कोई उस ऋणको स्वीकार करता है, कोई नहीं करता। भैया, तुम्हें मेरा कुछ नहीं देना। इस समय तुम मुझे जो दोगे, वह मानों दान दोगे। मुझे दान करो। मुझपर बड़ी भारी विपत्ति आ पड़ी है।

कामता०—मुझे अब समय नहीं है। मैं जाता हूँ। (प्रस्थान)

दीना०—क्यों भोलानाथ ! क्या सोच रहे हो !

भोला०—भवानीप्रसाद—अजी भवानीप्रसाद—

दीना०—भवानीप्रसाद क्या करेगा !—

प्रेम०—वह देखिए, श्यामलाल जा रहा है।

भोला०—कौन श्यामलाल ?

प्रेम०—जिसे लड़कीका व्याह करनेके लिए पाँच हजार रुपए आपने दिये थे—बाबू श्यामलाल !—ओ बाबू श्यामलाल !—चला गया। उत्तर भी नहीं दिया। माल्म पड़ता है, मानों वह कभी आपके पास आया ही नहीं। मैं जानता हूँ, वह अब आपके पास कभी न आवेगा।

भोला०—क्यों ! क्या मैं पागल कुत्ता हूँ ! लोग मेरे पास आनेमें इतना डरते क्यों हैं ?—

दीना०—या तो वे उपकार करनेवालेको पहचान नहीं सकते, और या उनको देख ही नहीं पड़ता।

प्रेम०—वह रमनाथ जा रहे हैं। रमनाथ! अजी रमनाथ!

रम०—(नेपथ्यमें) क्या—

प्रेम०—जरा इधर तो आइए।

रम०—(नेपथ्यमें) आता हूँ।

भोला०—वह तो पुकारते ही चला आया। मनुष्य कहीं इतना खराब हो सकता है! हो एक जरा बिगड़ जाते हैं।—वह देखो आ रहा है।

प्रेम०—कुछ समझमें नहीं आता। उसे महाजनकी डिक्रीके संकटसे बचानेके लिए आपने पन्द्रह हजार रुपए दिये थे।

भोला०—वह मेरी बहिनका दामाद है।

दीना०—ओः, इसीसे आ रहा है।

[रमनाथका प्रवेश]

भोला०—आओ भैया!

रम०—बाबूजी, यह खूब किया!—बुढ़ापेमें यह बदनामी! मैं आप ही आ रहा था।—यह बदनामी!—एक वेश्याके चरणोंमें तो इतना रुपया उड़ेल दिया, और मैंने कल अपनी लड़कीके ब्याहके लिए पाँच हजार रुपए मँगाये, तो कहला भेजा कि इस समय रुपए मौजूद नहीं हैं। मैं आपकी बहिनका दामाद हूँ—मेरा कुछ भी खयाल नहीं!

दीना०—तुमने सिर खरीद रक्खा है भैया, सिरपर चढ़ो।

भोला०—ना ना। सुनो भैया, मुझे खुद ही इस समय रुपयोंकी जरूरत है। तुम्हें कहाँसे देता!

राम०—लेकिन वेश्याके पैरोंमें रुपया उड़ेल दे सकते हैं। अच्छी बात है—

भोला०—वेश्याके पैरोंमें ?

राम०—विशेष कहनेकी जरूरत नहीं है—धूर्त, शराबी, लंपट—

प्रेम०—चुप रह उल्लू—(जाकर गर्दन पकड़ता है।)

भोला०—अरे यह क्या करते हो !

प्रेम०—निकल यहाँसे।

राम०—अच्छी बात है !—इस घरमें अब कौन साला पैर रखता है ! (प्रस्थान)

दीना०—अरे बापरे, यह तो भीष्मकी प्रतिज्ञा है।

भोला०—यह क्या ! तो क्या सचमुच ही मनुष्य इतना अकृतज्ञ हो सकता है ! इसकी—इसकी तो मैं कभी कल्पना भी नहीं कर सका।—भवानीप्रसाद, एक—ना, कुछ मेरी समझमें नहीं आता। कुछ समझमें नहीं आता। मेरा सिर घूमा जा रहा है। आँखोंके आगे अँधेरा छा रहा है।—ईश्वर ! रुपये न पाऊँ, भूखों मरूँ, सरस्वती फाँसीपर लटक जाय—लेकिन मनुष्यपर और तुमपर, मेरा विश्वास अटल बना रहे।

दीना०—भोलानाथ, मैं इन रुपयोंका प्रबन्ध करने जाता हूँ। तुम निश्चिन्त रहो।

भोला०—अरे यह क्या है ! आकाशमें नक्षत्र हिल रहे हैं—शराब पीली है क्या ! पृथ्वी पैरोंके नीचेसे निकली जा रही है। चन्द्रमा अग्निकी वर्षा कर रहा है। हवा एक जगह खड़ी होकर अपना पसीना पोंछ रही है। दीनानाथ, मुझे सँभालो। गिर पड़ूँगा।

दीना०—धैर्य न छोड़ो। मैं इन रुपयोंका प्रबन्ध करता हूँ।—मैं प्रबन्ध करके रुपए लाता हूँ।

भोला०—लाते हो! लाते हो!—हाँ ले आओ! भिक्षा माँग करके हो, चोरी करके हो—जिस तरह हो, ला, दो। सरस्वती बच जाय, उसके बाद भले ही प्रलय हो जाय! मेरी कुछ हानि नहीं।

दीना०—भोलानाथ, शोकसे पागल न हो जाना।

भोला०—ना ना। पागल न होऊँगा। अभीतक सरस्वती जेलमें पड़ी सड़ रही है। वह सोनेकी प्रतिमा, साक्षात् उषा, वह मक्खनसे मुलायम अंगोंवाली बेटी, जेलमें सड़ रही है। वह सती, वह योगिनी, वह दुखिया, वह आनन्दमयी, वह सुन्दरी, वह देवी, मेरी पोती मरने जा रही है। मेरे शरीरकी शक्ति, मेरी आँखोंकी ज्योति, मेरे जीवनका सुख, मेरे परलोकका स्वर्ग—मेरे इस लोकका सर्वस्व, मेरी प्राणोंसे प्यारी पोती—मुझे छोड़कर चली जा रही है। मैं जाने न दूँगा।—रुपए चाहिए। समझे दीनानाथ?—रुपए चाहिए।

दीना०—अच्छा, मैं इसी घड़ी जाता हूँ; चाहे जहाँसे जैसे हो—रुपए लिये आता हूँ। तुम निश्चिन्त होओ। (प्रस्थान)

भोला०—निश्चिन्त होऊँ! हाँ, डर क्या है! दस हजार रुपए कोई उधार न देगा!—संसारमें क्या सभी कृतघ्न हैं!—अरे मैं तुम लोगोंको अपना सर्वस्व देकर, खुद कंगाल होकर, राहमें भीख माँगनेवाला फकीर होकर, द्वार-द्वारपर रोता फिरता हूँ!—दया नहीं है? कृतज्ञता भी नहीं है?—ना, यह भी कहीं हो सकता है!—ये नक्षत्र फिर स्थिर, शान्त, ज्योतिर्मय देख पड़ने लगे। फिर स्निग्ध पवन डोलने लगा। वह शुभ्र चाँदनी शस्यश्यामला धरतीके स्नेहसे लिपट रही है!—ना ना! यह भी कहीं हो सकता है! सृष्टि इतनी

सुन्दर हैं, सृष्टिकी सबसे बढ़कर सृष्टि मनुष्य क्या इतना कुत्सित हो सकता हैं ! हो सकता है !––ना, इस बातपर विश्वास नहीं कर सकता, नहीं करूँगा।

[गौरीनाथका प्रवेश]

भोला०––वह लो गौरीनाथ आ गये ! गौरीनाथ, मुझे दस हजार रुपए उधार दो।

गौरी०––मैं ?––उधार दूँ ?––आपको ? आप कहते क्या हैं !

भोला०––क्यों ! क्यों ! तुमने मेरी जमींदारी नीलामपर चढ़वाकर खरीद ली है। तुमने मुझे मोहताज फकीर बना दिया है––ना ना, तुमने कुछ नहीं किया। मैंने खुद अपनी यह दशा की है––लोगोंको सर्वस्व देकर,––ना, मैंने किसीको कुछ नहीं दिया। केवल औरोंका ही लिया है––लूट की है ! किसीको दोष नहीं है। दोष मेरा है। इतना विश्वास, इतना स्नेह, इतना––नहीं, कहाँ ! मैंने किसीको प्यार नहीं किया; किसीसे कोई सरूक नहीं किया।––केवल दगाबाजी, जुआचोरी और हत्या करता फिरा हूँ। मुझे दस हजार रुपए दो।

गौरी०––मैं रुपए दूँगा आपको। आप बड़े भारी जमींदार हैं, आप बड़े भारी दाता हैं, आप बड़े आदमी हैं। हम सब छोटे लोग हैं।

भोला०––ना, किसने कहा ! छोटा आदमी मैं हूँ, नीच मैं हूँ, घृणाके योग्य मैं हूँ, पापी मैं हूँ। तुम सब धार्मिक हो, तुम सब पुण्यात्मा हो, तुम सब देवता हो––रुपए दो ! मैं एक ही महीनेमें यह ऋण चुका दूँगा।

गौरी०––उसका जमानतदार कौन है !

भोला०––मैं अपनी जमींदारी रेहन रखता हूँ।

गौरी०—सारी सम्पत्ति?

भोला०—मेरा जो कुछ है—मेरी जमींदारी, मेरा घर, मेरा यह लोक, मेरा परलोक—सब ले लो। मुझे दस हजार रुपए दो। मैं अपनी पोतीको बचाना चाहता हूँ। मेरा सब चला जाय, पर वह बच जाय।

गौरी०—मुंशीजी—तमस्सुक दीजिए तो। दादाजी दस्तखत कीजिए!—दादाजी, *आपकी विपत्तिका हाल सुनकर मैं तमस्सुक साथ ही* लेता आया हूँ। यह भी जानता था कि मुझे ही यह रकम उधार देनी होगी। इसीसे एकदम तमस्सुकका मजमून भी लिखाकर लेता आया हूँ। आपने एक दिन मेरी विपत्तिमें सहायता की थी—खुद रुपए ले जाकर घर पहुँचा दिये थे। आप देखते हैं, उस उपकारको मैं भूला नहीं।

भोला०—तुम्हारी जय हो।

गौरी०—मुंशीजी—

(मुंशी तमस्सुक देता है)

गौरी०—तो दस्तखत कीजिए।

भोला०—कहाँपर दस्तखत करूँ?

गौरी०—इस जगहपर।

भोला०—लो। (दस्तखत कर देते हैं।)

गौरी०—अच्छी बात है। (तमस्सुकको लपेटकर जेबमें रखता है।)

भोला०—रुपए?

गौरी०—घर जाकर भेजता हूँ।—

भोला०—भगवान् तुम्हारा भला करें!—मैं दीनानाथसे कह रहा था कि यह भी कहीं हो सकता है कि मनुष्यकी जाति कृतघ्न हो!—

मुन्नी—इससे अच्छी जगह और कौन है ! वह देखो, पतितपावना गंगा अपने उद्दाम उच्छ्वाससे दोनों किनारोंको प्लावित करती हुई वेगसे कहीं चली जा रही है । वह देखो, नदीके उसपार लाल रंग धारण किये हुए सूर्य अस्त हो रहे हैं । वह देखो, जीभकी तरह लपलपाती हुई चिता जल रही है । वह देखो कितने ही लोग मुर्दोंको कन्धोंपर लादे आ रहे हैं, लाशोंको उतार रहे हैं, जला रहे हैं । मिट्टीके शरीर धकधक करके जले जा रहे हैं, और वे एकटक वही देख रहे हैं। उसके बाद सदाके लिए पार्थिव सम्बन्ध तोड़कर शून्य घरको लौटे जा रहे हैं !—कैसा सुन्दर दृश्य है !

भग०—(विस्मयसे) सुन्दर है !

मुन्नी—अत्यन्त सुन्दर है ! जीवनका दीपक बुझ गया है; वेदना-की धड़कन थम गई है; मोहका मोह जल गया है; काले बादलके ऊपर बिजली चमक रही है; जन्मके ऊपर मृत्यु गरज रही है !—इसीसे मेरी मैया श्मशानचारिणी है ।

भग०—कहाँ है मैया !

मुन्नी—जरा उसपार देखो !—देखो !—क्या देखते हो ?

भग०—लाल रंगका सूर्य अस्त हो रहा है ।

मुन्नी—वहाँपर नहीं। जीवनके उस पार देखो—कुछ देख पाते हो

भग०—नहीं—

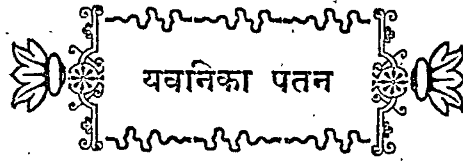
मुन्नी—मैयाको ?

भग०—कहाँ है मैया !—

मुन्नी—जरा जोरसे मैया कहकर पुकारो ! देखो, देख पाते नहीं ! पुकारो ! ता है)

भग०—मैया ! मैया !

मुन्नी—नहीं देख पाते ?—मैं तो देख रही हूँ । (घुटने टेककर और हाथ जोड़कर) विश्वव्यापिनी विवसना उन्मादिनी काली कराली मैया मेरी ! वह कैसी मूर्ति है ! दोनों ऊपर उठी हुई भुजायें आकाश भेद कर ऊपर चली गई हैं; मस्तकके चारों ओर करोड़ों चन्द्र-सूर्य-ग्रह-तारा-गण नृत्य कर रहे हैं; कमरसे लिपटी हुई पृथ्वी दुग्ध-पान कर रही है; पैरोंपर रसातल मूर्छित भावसे पड़ा हुआ है !—वह देखो, मैया अपनी मुट्ठीसे संहार और सृष्टिका आविर्भाव कर रही है; उसकी जिह्वामें हुंकार और अभय-वाणीका संगीत ध्वनित हो रहा है; उसके हृदयमें जन्म और मृत्यु स्पन्दित हो रहे हैं; उसके सामने स्वर्ग, पीछे नरक—दो महासमुद्रोंकी तरह पड़े हुए हैं । उसकी छातीके ऊपर जगतके सब पुण्यात्मा सो रहे हैं । वह देखो तुम्हारे दादाजी हैं, वह देखो तुम्हारी स्त्री है, वह देखो तुम्हारी माता है—जगन्माताकी छातीके ऊपर—वह 'उस पार' !



फिरसे मनुष्यका विश्वास मैंने पाया। मानों मेरी जान बची। तुम्हारी जय हो गौरीनाथ।—और सरस्वती! मैं तुझे बचाऊँगा, मैं साबित कर दूँगा, संसारको दिखा दूँगा कि तू कितनी बड़ी सती है—कितनी बड़ी मिथ्यावादिनी है! तू संसारकी आँखोंमें धूल डाल सकती है, मगर मेरी आँखोंमें नहीं। तू मुझे छोड़ जायगी! नहीं मैं न छोड़ूँगा।

(प्रस्थान)

गौरी०—समझे मुंशीजी!

मुंशी—जी हाँ, समझ गया।

[कामताप्रसाद और रामनाथका प्रवेश]

गौरी०—तुम लोग आ गये!—जरा दस्तखत करने होंगे। यह लो।

कामता०—दस्तखत? कैसे!

गौरी०—देखो न।—गवाह होना होगा।

कामता०—(पढ़कर) ओ! रुपए दे चुके?

गौरी०—बिना दिये कहीं कोई राजीसे दस्तखत कर देगा!—उसके दस्तखत नहीं देखते हो!

कामता०—ओ! समझ गया।—खूब!—लाओ कलम। (दस्तखत करता है।)

गौरी०—रामनाथ तुम भी दस्तखत करो।

राम०—क्या करते हो कामताप्रसाद!

कामता०—कुछ परवा नहीं है दस्तखत कर दो।

(वह भी दस्तखत करता है)

राम०—लेकिन रजिस्ट्रीके समय?

गौरी०—तुम लोग गवाह हो।

कामता०—जीते रहो। तुम पक्के बदमाश हो। लेकिन यह बूढ़ा—एकदम घोर मूर्ख है।

(तीनों जने और मुंशीजी जोरसे ठहाका मारकर हँसते हैं।)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—वध्यभूमि

समय—प्रातःकाल

[दोनों हाथ बँधे रहनेकी हालतमें सरस्वती खड़ी है।
सामने जेलर साहब हैं।]

सर०—अब और कितनी देर है जेलर साहब?

जेलर०—आध घंटेके लगभग। सिविल सर्जन अभी नहीं आये।—ऊपरकी ओर क्या तक रही हो मैया?

सर०—एक बार, अंतिम बार, पृथ्वीको देख लेती हूँ।—कैसा सुन्दर स्वच्छ आकाश है!—कैसा नीला रंग है! सर्वत्र सन्नाटा है!—चिड़ियाँ बोलती नहीं हैं। वे अभीतक नहीं जगीं!—यह सूर्य निकल रहा है—क्यों न?

जेलर—हाँ मैया।

सर०—कैसी सुंदर है यह पृथ्वी! मुझे पहले तो यह कभी ऐसी सुंदर देख नहीं पड़ी। आज इसे छोड़े जाती हूँ, इसीसे शायद यह इतनी सुन्दर देख पड़ रही है।—मैं नित्य इस सौन्दर्यका उपभोग कर सकती थी। त्रिभुवनेश्वर! मैं मोक्ष नहीं चाहती। मैं फिर इस सुन्दर जगतमें जन्म लेना चाहती हूँ। मैं फिर आकर सूर्योदय देखना चाहती हूँ, फिर पक्षियोंका चहचहाना सुनना चाहती हूँ, फिर

सुवासित मलय-पवनके हिलकोरोंमें गोते लगाना चाहती हूँ, फिर प्यार करना चाहती हूँ। उस बार आकर जन्मके सुखका उपभोग कर लूँगी— अबका जन्म निष्फल गया—इसका उपभोग न कर सकी !—जेलर साहब, मरनेसे पहले एकबार अपने दादाजीसे मिलनेकी इच्छा थी। वे आये नहीं ?

जेलर—नहीं मैया।

सर०—तो फिर मैं उनसे यह नहीं कह सकी कि मैं उन्हें कितना चाहती थी जेलर साहब, हम दोनों—पोती और दादा—एक दूसरेको बहुत ही चाहते थे। शायद उस तरह और उतना किसीने जगतमें किसीको नहीं चाहा ! सामने बैठकर कभी वे एकटक मेरी ओर ताकते रहते थे, मैं उनकी ओर ताकती रहती थी। वे मुझे छातीसे लगा लेते थे और मैं आनन्दके मारे सारे संसारको भूल जाती थी। ओः ! उन्हें छोड़ जाना होगा !—जेलर साहब !

जेलर—क्या करूँ मैया, कोई उपाय नहीं है !

सर०—ना। उपाय नहीं है। मैंने हत्या की है।

जेलर—तुमने हत्या नहीं की। मैं कसम खाकर कह सकता हूँ मैया, कि तुमने हत्या नहीं की।

सर०—वे मेरे स्वामी आ रहे हैं। जरा मेरे हाथ न खोल दीजिए जेलर साहब।—फिर अभी बाँध देना।

(जेलर हाथ खोलकर द्वारपर जाकर खड़ा होता है।)

[भगवानदासका प्रवेश]

सर०—आओ, मैंने एक बार आखिरी भेंटके लिए तुमको बुलाया था—चरणोंकी रज दो (चरणोंकी रज मस्तकसे लगाना) जन्मभरके लिए जाती हूँ। आज्ञा दो।

भग०—सरस्वती, तुमने यह क्यों किया ?

सर०—(हँसकर) क्या ?

भग०—झूठ कहकर व्यर्थ ही हत्याका अपराध अपने सिर ले लिया ! क्यों ले लिया !

सर०—जानते नहीं हो क्यों ?

भग०—इस—नराधमको बचानेके लिए ? मेरा यह निन्दित कलुषित जीवन जगतके किस उपकारमें लगेगा सरस्वती ?

सर—मैंने यह काम जगतके लिए नहीं अपने उपकारके लिए किया है ।

भग०—तुम्हारा क्या उपकार हुआ इसमें ?

सर०—सुख मिला । गलेमें फाँसी लगाती थी । लेकिन इस फाँसीके समान उस फाँसीमें सुख न होता । यह एक कर्त्तव्य करके मैं मरती हूँ ।

भग०—प्राण देकर सुख !

सर०—बड़ा सुख है ! मरते तो सभी हैं । कोई डूबकर मरता है, कोई जलकर मरता है, कोई साँपके काटनेसे मरता है, और बहुतसे लोग रोगमें कष्ट भोगकर मरते हैं । मरना तो होगा ही । दो दिन आगे या दो दिन पीछे । भाग-भाग कर मरनेकी अपेक्षा हँसते हँसते मृत्युके गले लग जाना क्या अधिक सुखकी बात नहीं है !

भग०—लेकिन संसारके भोग छोड़कर सदाके लिए यहाँसे चले जाना—मुझे बड़ा डर माॡम होता है—बहुत डर लगता है ।

सर०—इतना डर लगाता है, इसीसे तो मृत्युकी जय है और अगर डरूँ नहीं !—बस, मैं मृत्युजयिनी हो गई । यह क्या कम लाभकी बात है ?

भग०—मरनेसे क्या तुम सचमुच नहीं डरती हो ?

सर०—ना ! (छाती फुलाकर) मैंने दादाजीसे सुना है कि जब युद्धका बाजा बज उठता है, तब सिपाही स्थिर नहीं रह सकते; नाचते हुए तरवारों और तोपोंकी बाढ़पर आगे बढ़ने लगते हैं। मैंने आज कर्त्तव्यके डंकेका गंभीर आह्वान सुना है। उसीको सुनकर मैं सिर ऊँचाकर, निःशंकचित्तसे, विजय गर्वके साथ मरने चली हूँ।

भग०—क्या, कहाँ चली हो ?

सर०—यह नहीं जानती। यदि सब इसी जन्ममें समाप्त हो जाता है—यदि परलोक नहीं है, तब तो कुछ दुःख ही नहीं है। पर-जन्ममें मैं ही अगर नहीं रहूँगी, तो दुःखका अनुभव कौन करेगा ?—

भग०—और अगर परलोक हो ?

सर०—तो वह इस लोककी अपेक्षा बुरा नहीं हो सकता। इसी जन्मकी तरह वह जन्म भी सुख-दुःखसे गढ़ा हुआ होगा। खास कर ज्ञानके अनुसार अगर मैं अपना कर्त्तव्य किये जाऊँ, तो यह ध्रुव सत्य है कि उसका परिणाम बहुत बुरा नहीं हो सकता। मैं विश्वास करती हूँ कि परकाल है—वह चाहे इसी दुनियामें हो, और चाहे किसी और दुनियामें हो। इस बुद्धि, इस विवेक, इस अनुभव—इतने बड़े आयोजनकी क्या इसी जगह—इन पचीस-तीस वर्षोंमें ही समाप्ति हो जायगी ? यह आकांक्षा निश्चय ही रक्त-मांसमें अस्थिमज्जासे आवृत होकर फिर मूर्त्तिमती होकर आवेगी ! इस सुनहले रंगसे रंजित नीले आकाशकी तरफ आँख उठाकर देखो, इस हास्यमयी धरतीकी ओर निहारो, इन पक्षियोंका कलरव सुनो, यह गऊका गंभीर रँभाना सुनो, यह मनुष्यकी स्वर्गीय कण्ठध्वनि सुनो—इस अनुपमा सृष्टिकी अपूर्व शृंखलाको मनमें विचार कर देखो ! यह क्या किसी लड़केका खेल है !

यह क्या पागलका प्रलाप है ! यह क्या मदोन्मत्त ब्रह्माण्डपतिका अट्टहास है ! इसका एक महान्‌से भी महान् परिणाम अवश्य ही है !—ना स्वामी, मरनेसे मैं बिलकुल नहीं डरती—बस, मुझे आज्ञा दो।

भग०—सरस्वती, उससे पहले मुझे क्षमा किये जाओ।

सर०—किस लिए !

भग०—मैंने तुमको गालियाँ दी हैं, मारा है, और अन्तको मैं तुम्हारे फाँसीपर चढ़नेका कारण हुआ हूँ।

सर०—(हँसकर) अच्छा, लेकिन अब अपनेको सुधारनेकी चेष्टा करो। तुम्हारे ही भलेके लिए कहती हूँ। नहीं तो जान रक्खो, तुम्हारा भविष्य बड़ा ही भीषण है !—अच्छा आज्ञा दो !

भग०—ईश्वर ! और एक बार सुयोग दो, सरस्वतीको बचाओ, मुझे बचाओ। फिर घरगिरिस्ती सँभालूँ। मेरी माको लौटा दो, पूजा करूँ; स्त्रीको लौटा दो, उसे चाहूँ—प्यार करूँ।

सर०—दूसरे जन्ममें आकर देखूँगी कि तुम कितना चाहते और आदर करते हो।—अच्छा जाओ। मैं मरनेके लिए तैयार हूँ।

(भगवानदास जाना चाहता है)

सर०—खड़े रहो, और एक बार चरणोंकी रज ले लूँ। (चरण छूती है) जाओ। (भगवानदासका प्रस्थान)

जेलर—मैं जानता हूँ मैया, तुमने हत्या नहीं की !

सर०—यह बात नहीं है जेलर साहब ! ऐसा होता तो मुझको फाँसी क्यों होती ?

जेलर—तुमसे पहले भी अनेक निरपराध लोग फाँसीपर लटक चुके हैं। मनुष्यका न्याय और क्या होगा मैया !—लो जान पड़ता है, वे तुम्हारे दादा आ रहे हैं।

(प्रेमशंकर, दीनानाथ और भोलानाथका प्रवेश)

भोला०—यही मेरी स्नेहकी पुतली है !

सर०—दादाजी ! दादाजी ! (छातीसे लगकर रोती है)

भोला०—बचा नहीं सका बेटी । स्वप्नमें भी मैंने कभी नहीं सोचा था कि मुझे बुढ़ापेमें अन्तको यह देखकर मरना होगा । इसीके लिए क्या इतने दिन जीता रहा हूँ ! ईश्वर, जो मेरे प्राणका प्राण है, आत्माकी आत्मा है—क्या उसी निरपराधिनीकी फाँसी देखनेके लिए जीता रहा हूँ !

सर०—दादाजी, यह आप क्या कह रहे हैं ! मैंने हत्या की है ।

भोला०—ना बेटी, तूने हत्या नहीं की । तू यह काम कर नहीं सकती ! मैं जानता हूँ, मेरा अन्तरात्मा जानता है, ईश्वर जानते हैं, तूने हत्या नहीं की । तू हत्या कर ही नहीं सकती । सतीके गर्भसे तेरा जन्म है, सती-सावित्रीके देशमें तेरा निवास है—तू हत्या करेगी ! आज अगर वह दिन होता, न्यायका युग होकर अग्निपरीक्षाका युग होता, तो मैं चिल्लाकर कह सकता हूँ कि तू सीतादेवीकी तरह, अपने पुण्यकी ज्योतिसे अग्निकी ज्वालाको मलिन करके हँसते हँसते उस आगके भीतरसे निकल आती । लेकिन क्या करूँ बेटी—आज यह आईनका युग है, इजलासका युग है, गवाहीका युग है, जिरहका युग है ।

सर०—मैं स्वीकार करती हूँ—वे लोग क्या करें !

भोला०—क्या करें ! उन्हें केवल इस चन्द्र-मुखकी ओर देखना होगा, और कुछ न करना होगा । गवाही मिलनेसे ही क्या यह सिद्ध हो गया कि चन्द्रमा जलाता है, अग्नि शीतल करती है, वायु स्थिर है, पर्वत चंचल है, बच्चे पिशाच हैं, माता राक्षसी है ! इस शान्त सजल

दृष्टिमें क्या विष मिला रह सकता है ? इस मृदु हँसीके नीचे क्या छुरा छिपा रह सकता है ?—वे मूर्ख हैं, वे अन्धे हैं।

सर०—जो होना था, सो तो हो गया दादाजी ! अब विदा माँगती हूँ।

भोला०—स्वामीको मृत्युसे बचानेके लिए तू आज यह फाँसीकी जयमाला गलेमें पहनती है। पृथ्वी आज अपना श्रेष्ठ रत्न स्वर्गको देकर धन्य होगी, शून्य होगी ! और मैं—मैं—ओः ! जला जा रहा हूँ, खाक हुआ जा रहा हूँ।

जेलर—वह डाक्टरसाहब आ रहे हैं।

सर०—तो अब मेरे जानेका समय हो गया। विदा कीजिए दादाजी, दुःख न कीजिएगा। यह बिछुड़ना एक दिन होता ही। मुझे जो स्नेह आपने दिया था, उसे आज लौटाकर—सम्पूर्ण विश्वको बाँट दीजिए—पृथ्वी उससे सम्पत्तिशालिनी होगी। अपने अपार कर्तव्य-ज्ञान और स्नेहके साथ अतुल सहनशीलताको मिला दीजिए। जगतको विस्मित कर दीजिए। विदा कीजिए दादाजी !

(प्रेमशंकर और दीनानाथको प्रणाम करना)

भोला०—विदा करूँ ! विदा करूँ ! नहीं मुझसे न हो सकेगा सरस्वती ! मेरी बेटी ! (लिपट जाता है)

दीना०—आओ भोलानाथ ! (हाथ पकड़ता है)

भोला०—जाओ, मैं नहीं जाऊँगा !

सर०—जाइए दादाजी—मेरे दादा (रो देती है) ले जाइए मामाजी।

भोला०—मैं नहीं जाऊँगा। मैं भी तेरे साथ फाँसीपर लटकूँगा। मैं नहीं जाऊँगा।

सर०—खींचकर ले जाइए मामाजी।

(दीनानाथ और प्रेमशंकर भोलानाथको जबर्दस्ती खींच ले जाते हैं। भोलानाथ "छोड़ो, मैं नहीं जाऊँगा" कहकर छुड़ानेकी चेष्टा करता करता बाहर चला जाता है। सरस्वती सिर झुकाकर रोने लगती है। फिर अपनेको सँभालकर कहती है—)

सर०—ओ! जाने दो, मैं तैयार हूँ जेलर साहब!

(पहरेदार लोग सरस्वतीका मुँह ढँक देते हैं; दोनों हाथ पीछे बाँध देते हैं। जेलर साहब उधर पीछे फिरकर सिर झुकाकर खड़े रहते हैं। कर्मचारी सरस्वतीको फाँसीके तख्तेपर चढ़ाता है।)

[डाक्टर साहब और मजिस्ट्रेटका प्रवेश। दोनों घड़ी देखते हैं। मजिस्ट्रेट मृत्युकी आज्ञा पढ़ते हैं।]

"बन्दिनी, मुन्नी वेश्याकी हत्याके लिए तुमको फाँसीकी आज्ञा हुई है। मैं उसी आज्ञाका पालन करता हूँ। ईश्वर तुम्हें क्षमा करें।— जल्लाद, अपना काम करो।"

(जल्लाद सरस्वतीके गलेमें फाँसीका फंदा डाल देता है)

मजि०—तो—(मुँह फेरकर) one—two—

[तेजीसे मुन्नीका प्रवेश]

मुन्नी—खबरदार! निरपराधिनीको फाँसी न देना। निरपराधिनीको फाँसी न देना। मुन्नीको किसीने नहीं मारा। मुन्नी जिन्दा है।

मजिस्ट्रेट—तुम कौन हो?

मुन्नी—मैं ही मुन्नी हूँ।

पाँचवाँ अङ्क

पहला दृश्य

स्थान—काशी; गंगातटपर एक कुटी
समय—रात; बदली घिरी हुई है

[भोलानाथ और दीनानाथ]

भोला—मेघ ! रक्तकी वर्षा करो । हवा ! भीमवेगसे गरज उठ । समुद्र ! जल उठ । पृथ्वी ! बीचसे चार फाँक होकर चिनगारियाँ बरसाती हुई चारों ओर छिटक पड़ । और मैं, महाशून्यमें अकेले खड़े होकर वही देखूँ ।—मनुष्य इतना अकृतज्ञ होता है !

दीना०—घर लौट चलो ।

भोला०—चलूँगा । ठहर जाओ । पहले प्रलयका पूर्ण होना देख लूँ । पहले चन्द्र-सूर्यका बुझना और पृथ्वीकी श्यामशोभाको जलकर खाक होते देख लूँ । एक धूमकेतुकी टक्करसे महाज्वालामय विध्वंस हो जाय ।

दीना०—तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है ।

भोला०—पृथ्वी अगर रहे, तो उसके ऊपरसे मनुष्य-जाति लुप्त हो जाय, और उसके बदले केवल काले साँप ही घूमते फिरें ।—मनुष्य इतना अकृतज्ञ है !

दीना०—चलो भोलानाथ—

भोला०—मनुष्य अगर रहें, तो केवल वे ही बच रहें जो चोर, लंपट, धोखेबाज हैं और सब मरकर सड़-गलकर नष्ट हो जायँ ! ऐसा होनेपर यह ब्रह्माण्ड खूब अच्छी तरह भन्नाता हुआ घूमेगा !—उः !

दीना०—रात कितनी है—जानते हो ?

भोला०—प्रेम, दया, स्नेह, पातिव्रत्य, वात्सल्य सब पृथ्वीपरसे उठा ले जाओ दयामय ! प्रेममें केवल कामवासना रहे; बन्धुत्वके ऊपर ईर्ष्या राज्य करे; उपकारके सिरहाने कृतघ्नता पहरा दे ! आहारमें विष रहे, शरीरमें व्याधि रहे, ऐश्वर्यमें अहंकार रहे, दारिद्र्यमें घृणा रहे !—तब दुनिया खूब चलेगी ।

दीना०—ना ! तुम्हें जबर्दस्ती ले जाकर सुलाये बिना तुम न सोओगे ! आओ ।—(हाथ पकड़ता है)

भोला०—छोड़ दो (हाथ छुड़ाकर) ओ ! तुम हो !—दीनानाथ, तुम अबतक मेरे साथ क्यों हो ? स्नेहमय बन्धु,—ब्रह्माण्डके आनियम, बीती हुई गरिमाके ध्वंसावशेष, तुम अकेले क्यों पीछे पड़े हो ? सब कुछ चला गया है, तुम भी जाओ । जिस पृथ्वीपर आज दाक्षिण्य भिक्षुक है, उपकार सताया जा रहा है, स्नेहको लात मारी जा रही है, वहाँ तुम क्यों हो ! सब चोर और धोखेबाज हैं !—कैसी सृष्टि की थी मैया, जगदम्बा ! ले, तू अपनी सृष्टिको लौटा ले ।—दीनानाथ !

दीना०— भोलानाथ !

भोला०—अब मैया कहकर मत पुकारो । वह सन्तानको विष खिलाती है; सन्तान मृत्युकी यन्त्रणासे छटपटाती है, और वह पाषाणी उसे देख तालियाँ बजाकर अट्टहास करती है । कहीं ऐसी भी मैया होती है ! उसे मत पुकारो ।

दीना०—तो फिर किसे पुकारूँ ?

भोला०—क्यों—क्यों !—मगर हाँ, तुम्हारा कहना भी ठीक है । फिर किसे पुकारा जाय ? मैयाको छोड़कर और किसके पास दौड़ा जाय ? और है ही कौन ? माताके अत्याचारकी नालिश उसी माताके निकट की जाती है । और है ही कौन ?

दीना०—मैयाके विचारको मैया ही जाने । तुम कौन हो !

भोला०—ठीक कहा दीनानाथ, मैया कहकर पुकारो, मैया कहकर पुकारो !—लेकिन देखो, सारे शब्दों, सारी प्रार्थनाओं और सारे संगीतोंको दबाकर यह मनुष्यकी कृतघ्नताकी विजय-भेरी बज उठी है। सब दुःख, यन्त्रणा और अन्तर्दाह इसी महादुःखमें डूब जाता है कि मनुष्य अकृतज्ञ है ! यहाँतक कि मेरे हृदयकी अधीश्वरी, स्नेहकी अधिष्ठात्री, सरस्वतीकी आत्महत्या भी इस दुःखके महा-वनमें खो जाती है।

दीना०—सरस्वतीकी आत्महत्या मत कहो भोलानाथ ।

भोला०—तो क्या कहूँ !

दीना०—आत्मोत्सर्ग कहो । हिन्दुओंके घर-घर सावित्रीकी पूजा होती है । लेकिन हिन्दुओंके हर घरमें जो सावित्री सरीखी देवियाँ मौजूद हैं ! उनका किसीको ध्यान भी नहीं है ! अपनी चीजका कोई आदर करना नहीं जानता ।

भोला०—ठीक कहा दीनानाथ। सरस्वतीने स्वामीके प्राण बचानेको अपने प्राण दिये हैं । वह गई है—और जगतके लिए छोड़ गई है एक अखण्ड ज्योति । उसका मुझे दुःख नहीं है—लेकिन उसने गलेमें फाँसी लगाई ! मुझसे रूठकर गलेमें फाँसी लगाई ।—और मैं वहीं खड़े खड़े देखता रहा ।

दीना०—तुमने तो देखा नहीं ।

भोला०—देखा है । उस गोरे गलेके चारों ओर उन लोगोंने रस्सीका फंदा डाल दिया—उसे खींचकर फाँसी दे दी !—अच्छा दीनानाथ, कैसे उन्होंने उसको फाँसी दे दी !

दीना०—कैसा विचित्र भ्रम है !—तुम स्मृति और कल्पनाके अन्तरको ही नहीं समझते ।

भोला०—वही रस्सी गलेमें पहिनकर मेरी पोती लटक गई, पृथ्वी काँप उठी, संसार अन्धकारमें छिप गया।

दीना०—फिर वही पागलपन शुरू हो गया।

भोला०—उस झूलते हुए शरीरने सवेरेकी हवामें रूपका एक तमाचा मार दिया और उसके बाद एकदम सब स्थिर हो गया! स्नेह-स-जल दोनों नीली आँखें आकाशकी ओर ताकती रह गईं। श्वेत मोती ऐसे दाँतोंके ऊपर, दोनों रंगीन लाल ओठोंके ऊपर, फेन छा गया। वह मक्खनसा मुलायम शरीर सूखी लकड़ीकी तरह सख्त और निश्चेष्ट हो गया। मैं खड़े खड़े वही देखा किया।—ओ हो हो हो!

दीना०—धैर्य न छोड़िए।—छिः।

भोला०—उसके बाद उसके शरीरसे निकला हुआ ज्योतिर्मय आत्मा स्वर्गको उड़ गया।—वह कैसा सुन्दर था!

दीना०—अब इन बातोंको सोचनेसे क्या होगा?

भोला०—ना ना! मनुष्यकी कृतघ्नता आकर इस दृश्यको छाले; बिजलीकी कड़कड़ाहट आकर इस रोनेको थँमा दे; रक्तप्रपात नीचे आकर इस सुन्दर ध्वंसको डुबा दे।

दीना०—एकदफा यह चिन्ता, और एकदफा वह चिन्ता—ऐसा करनेसे तुम मर जाओगे!

भोला०—ओ! हाँ! जीते रहना होगा। लूला-लँगड़ा अपाहिज हो जाऊँ, शूलकी पीड़ा हो, सिरके दर्दके मारे मत्थेसे आगकी चिनगारियाँ निकलें—तब भी जीते रहना होगा। हाँ हाँ, जीते रहना होगा। जाओ दीनानाथ, जाकर सोओ। मैं भी सोने जाता हूँ—काली नागिनने बड़े जोरसे डस लिया है!— (प्रस्थान)

दीना०—हायरे अभागे! इतना प्यार लेकर संसारमें क्यों आया था! (प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

स्थान—भोलानाथके घरका बरामदा

समय—प्रातःकाल

[प्रेमशंकर, कालीचरण और मुन्नी तीनों खड़े खड़े बातें कर रहे हैं]

मुन्नी—बाबू भगवानदासनने मुझपर पिस्तौल दागा जरूर था; लेकिन उससे मेरे कुछ हल्कीसी चोट ही लगी थी। होश आनेपर देखा, उस जगह कोई नहीं है; मेरी पिस्तौल पैरोंके पास पड़ी है। पिस्तौल उठाकर मैं बाहर आई! देखा, पड़ोसी लोग आकर जमा हो गये हैं; बातें कर रहे हैं। मैं पिस्तौलको आँचलमें छिपाकर गाड़ीपर सवार हो गई। किसीने उधर ध्यान नहीं दिया। घरमें जाकर सुना कि बागमें एक हत्या हो गई है। इससे सारी रात नींद नहीं आई। आखिर पिछली रातको मैं घर छोड़कर भाग गई।

काली०—उसके बाद?

मुन्नी—उसके बाद एक अखबारमें पढ़ा कि मुन्नी वेश्याकी हत्याके अपराधमें सरस्वती नामकी ब्राह्मण-कन्याको फाँसीका हुक्म हुआ है।

काली०—

The hungry judges soon the sentence sign
And wretches hang that jurymen may dine.

(भूखे विचारक शीघ्र ही दण्डाज्ञापर हस्ताक्षर कर देते हैं और नीच लोग फाँसी चढ़ा देते हैं, जिसमें जूरी लोग घर जाकर भोजन करें।)

प्रेम०—तो भगवानदासने गोली चलाई थी?

मुन्नी—हाँ।

प्रेम०—यह बात तुमने उस समय अदालतमें क्यों नहीं कही?

मुन्नी—इसका कारण यह था कि वे चाहे जैसे हों, बहिन सरस्वतीके पति हैं।

प्रेम०—इसीसे तुमने झूठ कहा कि तुम खुद आत्महत्या करनेवाली थीं? और यह झूठ बात कहकर तुमने जुर्माना दिया?—ताज्जुब है!

काली०—Woman's at best a contradiction still. (नारी अपनी उच्चतम अवस्थामें परस्पर विरुद्ध गुणधर्मोंका समूह है।)

(प्रस्थान)

[उद्भ्रान्तभावसे बाल खोले हुए सरस्वतीका प्रवेश। उसके पीछे भवानीप्रसादका प्रवेश]

सर०—मामा, आपने दादाजीको छोड़ दिया!

प्रेम०—मैं अगर यह जानता, तो क्या उनको छोड़ देता बिटिया! दूसरे दिन सबेरे उठकर सुना, उनका और दीनानाथका दोनोंका पता नहीं है।

सर०—और भवानीदादा—तुमने भी—

भवानी०—उसी मैयाकी सब इच्छा है। (आँसू पोंछते पोंछते शीघ्रतासे प्रस्थान)

सर०—उन्होंने निश्चयसे आत्महत्या कर ली होगी, मामा!

प्रेम०—ना बिटिया, कुछ डर नहीं है। दीनानाथजी साथमें हैं। कुछ डर नहीं है।—अब घरके भीतर चलो; अपनी मामीके पास जाओ। कुछ चिन्ता नहीं है।

सर०—मेरे दादाजीको ला दीजिए! मेरे दादाजीको ला दीजिए!

प्रेम०—ला दूँगा!—वे चाहे जहाँ हों, खींचकर ला दूँगा। तुम घरके भीतर चलो बिटिया।

मुन्नी—मेरे ही कारण इतनी विडम्बना हुई ।

सर०—बहिन, यह तुम क्या कह रही हो ? तुम्हीं मेरी रक्षा करनेवाली हो । अगर दादाजीको मैं फिर देख पाऊँ, तो उसका श्रेय तुम्हींको है ।—और अगर उन्हें न पाऊँगी तो—आत्महत्या करूँगी ।

मुन्नी—खबरदार बहिन ! इसकी अपेक्षा तो फाँसीपर चढ़ना ही अच्छा था । आत्महत्या करनेका अधिकार किसीको नहीं है ।—मुझे भी नहीं ।

[व्यस्तभावसे भवानीप्रसादका फिर प्रवेश]

भवानी०—बिटिया, दादाजीकी खबर मिल गई ।

सर०—(आग्रहके साथ) कहाँ हैं वे ?—कहाँ हैं वे ?

भवानी०—काशीमें । यह लो दीनानाथका पत्र । अभी मिला है ।

(प्रेमशंकरको पत्र देना)

सर०—भवानी दादा, आज ही काशी-यात्राका प्रबन्ध करो ।—अभी—इसी दम ।

प्रेम०—यह क्या बिटिया ! तुमसे खड़ा तो हुआ नहीं जाता । आओ, घरके भीतर आओ !—यह क्या ! (गिरती हुई सरस्वतीको पकड़ लेता है ।)

सर०—तो दादाजी अभी जीते हैं ! मामा ! मामा ! (छातीमें मुँह डालकर रोती है ।)

प्रेम०—यह क्या करती हो बेटी !—आओ, भीतर आओ ।

सर०—अभी आती हूँ, मैं आती हूँ दादाजी—

(प्रेमशंकर और सरस्वतीका प्रस्थान)

भवानी०—दयामयी मैया ! तूने बिटियाको और दादाको दोनोंको ही मौतके मुँहसे बचा लिया—मुझे लौटा दिया । तो अब यह वर भी लौटा दो मैया ! और कुछ न चाहिए ! लौट आकर दादा और बिटियाको

लेकर मैं इस घरमें पैर रख सकूँ मैया । जमींदारी भले ही चली जाय; परन्तु बापदादोंका यह घर न छिन जाय ।

मुन्नी—क्यों ! यह घर अब किसका है ?

भवानी—गौरीनाथका—इस समय तमस्सुककी रजिस्ट्री कराके दखल कर लेना ही बाकी है ।

मुन्नी०—कैसा तमस्सुक ?

भवानी०—बेमाना ।—जुआचोरने उसके रुपए भी नहीं दिये ।—हाँ मैया, तुम्हारे राज्यमें इस तरह दिन-दोपहर डकैती होती है ।

मुन्नी—तमस्सुककी रजिस्ट्री नहीं हुई ?

भवानी०—नहीं ।

मुन्नी—अगर यह तमस्सुक किसी तरह हाथ लग जाय, तब तो कुछ खटका नहीं है ?

भवानी०—जान पड़ता है—नहीं ।

मुन्नी—तो इसी हफ्तेमें यह तमस्सुक आपको मिल जायगा ।—आप निश्चिन्त रहिए ।

भवानी०—सो कैसे ?—किस तरह ?

मुन्नी—(मलिन हास्यके साथ) वेश्याके लिए कुछ भी असाध्य नहीं है ।

भवानी०—मुन्नी, मालूम नहीं, पूर्वजन्मके किस पापसे तुम्हारा जन्म वेश्याके यहाँ हुआ है ।

मुन्नी—वेश्याओंपर घृणा न कीजिए । वे बड़ी ही अभागिनी हैं । उनपर दया कीजिए । उनके घर नहीं है, परिवार नहीं है, बन्धु नहीं हैं । वे मानों अँधेरी रातमें बीहड़ राहसे चली जा रही हैं । दोनों ओर देखती जाती हैं—दरिद्रकी भी झोपड़ीमें दीपक जल रहा है; पति-पत्नीके प्रेमपूर्ण विमल हास्यका फुहारा छूट रहा है; बच्चे स्नेहके घोंस-

लेमें सुखसे सो रहे हैं । वे यह सब देखती हैं, और जाड़ेकी हवाके तीक्ष्णतर दंशनका अनुभव करती हैं, भीतर ही भीतर मन मसोसकर रह जाती हैं । करोड़ों नक्षत्रोंके बीचसे वे ही लक्ष्यहीन धूमकेतुकी तरह दौड़ी चली जा रही हैं;—चली जा रही हैं, क्योंकि चले जानेके सिवा और कोई उपाय नहीं है । उनकी हँसी मसानकी चिताकी आग है—वह जितनी ही उज्ज्वल है, उतनी ही ज्वालामयी है । अन्तको वह हँसी जब जल जलकर बुझती है, तब उसकी लंबी साँस मसानकी गर्म हवामें उठकर लीन हो जाती है । वे स्वयं ही अपनेको यथेष्टरूपसे घृणा करती हैं । उसके ऊपर आप लोग अपनी घृणाके बोझसे उनको और भी न दबावें । (सिर झुका लेती है)

भवानी०—घृणा !—तुम अगर मेरी कन्या होतीं—

मुन्नी—(आग्रहके साथ) तो !

भवानी०—तो मैं बिना किसी संकोचके तुमको अपने घरमें रख लेता ।

मुन्नी—(आग्रहके साथ) घरमें रख लेते ?

भवानी०—जरूर रख लेता । बेटी, जबसे तुमको देखा है, तबसे मेरे मनमें तुम्हारे प्रति असीम अनुकंपा और करुणाके भावका प्रादुर्भाव हो रहा है—नहीं मालूम क्यों ! जान पड़ता है कि तुम वेश्या नहीं हो, मानों तुम एक दिन सचमुच ही मेरी कन्या थीं, मानों एक दिन—

मुन्नी—(काँपते हुवा स्वरमें) और मैं अगर सचमुच आपहीकी कन्या होऊँ !

भवानी०—सत्य ही मेरी कन्या हो ! यह क्या कहती हो ! तुम्हारा तो जन्म वेश्याके घरमें हुआ है !

मुन्नी—मेरा जन्म वेश्याके घर नहीं हुआ है ।

भवानी०—तो !

मुन्नी—आकाश ! मुख ढक ले !-पृथ्वी ! कानोंमें उँगली दे ले ! आज वह बात प्रकट करूँगी ।—पिताजी ! (यह कहकर आगे बढ़ती है । भवानीप्रसाद चौंककर पीछे हटते हैं ।)

मुन्नी—पिताजी !—यह बात मैं इस जिन्दगीमें कभी प्रकट नहीं करती ! लेकिन आपने ही मेरा साहस बढ़ा दिया है ।—पिताजी- मैं सचमुच ही आपकी कन्या—

भवानी०—यह क्या !—तुम मेरी कन्या हो ! मेरी कन्या तो मर गई थी !

मुन्नी—(उठकर) वह अभगिनी मरी नहीं । (आगे बढ़कर) पिताजी !—(पीछे हटकर) ना । आपने सिर नीचा कर लिया है ! लज्जा, घृणा और क्रोधसे आपका चेहरा लाल हो रहा है ।—ना ना ना ! मुझे घृणा कीजिए, त्याग कीजिए, पैरोंसे रौंधकर चले जाइए ।

भवानी०—कन्या मेरी !—तेरा मरना ही अच्छा था ।—(हाथ जोड़कर ऊपरकी ओर देखकर) यह कैसी परीक्षामें डाला है ईश्वर ! हृदयमें शक्ति दो भगवन् !

मुन्नी०—नहीं पिताजी, मैंने जो कुछ कहा है, उसे भूल जाइए, मैं आपकी कन्या नहीं हूँ । मैं आपकी कोई नहीं हूँ । मैं काले सागरके ऊपर एक लहरकी तरह उठी थी—फिर उसी लहरकी तरह काले सागरमें गिर जाऊँगी ।

(भवानीप्रसाद मुन्नीकी ओर आगे बढ़कर कहते हैं—) मुन्नी !

मुन्नी—मैं अस्पृश्य हूँ । मुझे छूना नहीं—छूना नहीं ।

(तेजीसे प्रस्थान)

(भवानीप्रसाद कुछ सोचकर फिर गाने लगते हैं—)

विहाग

अभागी मोसों और न कोई।
पाय महानिधि अनायास ही हाय मूढ़ मैं खोई ॥ अभागी०॥
अन्धकारमहँ राह न सूझत, मैया कहां गई तू।
बोलत नहीं, पुकारत कबको, ऐसी निठुर भई तू। अभागी०॥
साथ छोड़ि सब सगे सिधारे, नेक दया नहिं आई।
तू न छोड़, मुख मोड़ न मोसों, तोसों आस लगाई ॥ अभागी०॥

[प्रेमशंकरका फिर प्रवेश]

प्रेम०—मुन्नी चली गई ?

भवानी०—कौन !—ना—हाँ चली गई। (गाते हैं)

प्रेम०—भवानीप्रसाद, रो रहे हो ?

भवानी०—कहाँ ! नहीं तो। (गाते गाते प्रस्थान)

प्रेम०—यह क्या। ये लोग कौन हैं ?—यह तो गौरीनाथ है ! किस लिए आया है !—

[गौरीनाथ, कालीचरण और पीछे पीछे क्रोधित कामताप्रसाद और शिवदयालका प्रवेश]

गौरी०—भोलानाथकी कुछ खबर पाई है ?

प्रेम०—आपको यह खोज करनेकी क्या जरूरत है !

गौरी०—तमस्सुककी रजिस्ट्री करनी होगी। वह अगर लापता हो, तो मुझे खुद ही जाकर तमस्सुककी रजिस्ट्री करा लेनी होगी।—ये लोग गवाह हैं।

शिव०—कभी नहीं।

गौरी०—यह क्या !

कामता०—राहमें मैंने कहा था, समझौता कर लो।

प्रेम०—समझौता काहेका ?

शिव०—हाँ समझौता कर लो !

गौरी०—(तमस्सुक निकालकर) ये तुम्हारे दस्तखत हैं।

शिव०—नहीं, ये दस्तखत जाली हैं।

गौरी०—तुम गवाह नहीं हो ?

शिव०—इसके गवाह नहीं हैं; गवाह और किसी बातके हैं।—क्यों जी कामता !

गौरी०—यह तुम्हारा काम है कालीचरण !

काली०—संभव है। गौरीनाथ, मैं इतने दिनोंतक केवल दर्शककी तरह निरपेक्ष भावसे दोनों ओरका रंग-ढंग देखता आता था और तुमने एक स्त्रीका खून किया है, यह जानकर भी मैं उदासीन था—That only shows a philosophic mind; (जिससे केवल दार्शनिक मानसका परिचय मिलता है) लेकिन तुमने जब बदमाशी करके एक सतीको फाँसीके तख्तेपर चढ़वा दिया और ऋषितुल्य भोलानाथको देशान्तरमें भेज दिया, तब मेरे philosophic mind (दार्शनिक मस्तिष्क) में भी एक भारी धक्का लग गया। बस, अब सहन नहीं होता! सच बात प्रकट कर दो शिवदयाल। उसके बाद जो होना होगा, होगा। (Do well and right and let the world sink) भली भाँति और उचित कार्य्य करो, संसारको डूबने दो—उसकी चिन्ता न करो।

गौरी०—(सूखा मुख लिये हुए) यह क्या !—अच्छा !—ऐं !—तो मैं अब जाता हूँ प्रेमशंकर !—आओ शिवदयाल ! आओ कामताप्रसाद ! कुछ कहना है।

[ठीक इसी समय भवानीप्रसाद फिर प्रवेश करता है और बिना कुछ कहे सुने दौड़कर गौरीनाथकी गर्दन पकड़ लेता है।]

प्रेमशंकर और काली०—अरे यह क्या करते हो !

भवानी०—निकल जा पाजी ! अभी तक यह घर दादाजीका है। दूर हो ! (लात मारकर गौरीनाथको सीढ़ीके नीचे गिरा देता है। फिर हाथ झाड़कर प्रेमशंकरके मुखकी ओर देखकर पूछता है—) ठीक किया ?

प्रेम०—खूब किया। (प्रस्थान)

भवानी०—(शिवदयाल और कामताकी ओर देखकर) अच्छा किया ?

दोनों—बहुत अच्छा किया।

शिव०—बस, अब नहीं सहूँगा। आज सब प्रकट कर दूँगा!— उस पाजीका साथ अब नहीं दूँगा (दोनोंका प्रस्थान)

भवानी०—(कालीचरणसे) क्यों साहब ! ठीक किया ?

काली०—बहुत ठीक किया ! Perhaps it was right to dissemble your love. But why did you kick him donwstairs. (यहाँ तक तो चाहे उचित मान लिया जाय कि तुमने अपना प्रेम छिपाया; पर तुमने उसे सीढ़ीके नीचे क्यों ढकेल दिया ?)

(भवानीप्रसादका शांतभावसे गाते गाते प्रस्थान)

अभागी मोसौ और न कोई।
पाय महानिधि अनायास ही हाय मूढ़ मैं खोई॥ अभागी०॥

तीसरा दृश्य

स्थान—मुन्नीका घर

समय—सन्ध्याकाल

[मुन्नी अकेली है और गाती है।]

ठुमरी—पंजाबी ठेका

इस जगमें हूँ निपट अकेली, मुझसा दुखी न कोई।
मन-ही-मनमें, सोचा करती, कभी न सुखसे सोई॥ इस०॥

हूँ विदेशिनी, यहाँ तुम्हारे सिवा न और किसीको—
मैं जानूँ-पहचानूँ; कैसे बहलाऊँ फिर जीको ॥ इस० ॥
दिन बीते, ले खिन्न हृदय-तन शिथिल-दौड़कर आती—
पास तुम्हारे; तुम्हें देखकर ठंडी होती छाती ॥ इस० ॥
घायल हृदय लिये मैं आर्त मैया, पास तुम्हारे।
उस मुखमें मृदु हँसी देखनेका संयोग विचारे ॥ इस० ॥
सूनी, सूखी और अनादरभरी भूमि है सारी ॥
तुम भी विमुख न होना, करना घृणा न मुझसे भारी ॥इस०॥

(गीत समाप्त करके मुन्नी खिड़कीके पास बैठकर और बाहरकी ओर देखकर कहती है—"ओः ! कैसी काली घटा उठी है—आँधी आवेगी।" यों कहकर मुन्नी आकाशकी ओर ताकने लगती है।)

[दासीका प्रवेश]

दासी—मालकिन !

(मुन्नी बहुत अधिक चौंककर गिरते गिरते सँभल जाती है)

मुन्नी—(कठोर स्वरसे) क्यों ?

दासी—बाबू गौरीनाथ आये हैं।

मुन्नी—गौरीनाथ ! गौरीनाथ कौन ?

दासी—तुमने उनसे आनेको कहा था ?

मुन्नी—ओ ! गौरीनाथ बाबू ! समझ गई। आज कौन दिन है ! —ओ ! हाँ, कहा था !—ऊपर बुला लाओ।

(दासीका प्रस्थान)

मुन्नी—किस लिए बुलाया है, और क्या करना होगा !—हे ईश्वर, इसमें अगर कुछ पाप हो, तो क्षमा करना !—यही मेरे जीवनका अन्तिम पाप है। तैयार हो हूँ। (आलमारीसे पिस्तौल निकालकर और उसे अच्छी तरह देखकर ठीक कर लेती है। फिर पिस्तौलको वस्त्रके भीतर छिपा लेती है और जल्दीसे वस्त्र ठीक कर लेती है।) अब मैं तैयार हूँ।—लो, वह आ गया।

[दासीके साथ गौरीनाथका प्रवेश]

मुन्नी—आइए। लछिया, बाहरसे दरवाजा बन्द कर दे।

(दासी बाहर चली जाती है।)

मुन्नी—बन्द कर दे, कुंडी चढ़ा दे।

गौरी०—दरवाजा बंद !—क्यों !

मुन्नी—ओ !—भूल हो गई।—खैर जाने दो। (हँसकर) जरूरत पड़नेपर लछिया अभी खोल देगी।

गौरी०—आज कैसा सुन्दर ठाठ किया है तुमने। कैसी सुन्दरी देख पड़ रही हो।

मुन्नी—सुन्दरी देख पड़ रही हूँ ! —अच्छा अब देखो ! (बिजलीका झाड़ जला देती है।)

गौरी०—ओः ! इतनी सुन्दरी हो तुम ! कैसा अद्भुत—कैसा सुन्दर—रूप है !—सुन्दरी !—(आगे बढ़ता है।)

मुन्नी—ठहरिए।—अब भला देखिए ! (अँधेरा कर देती है।) देख पड़ता है ?

गौरी०—कहाँ ? नहीं तो ! कहाँ हो तुम प्राणेश्वरी।

मुन्नी—यह देखो ! (एक हरे रंगकी रोशनी कर देती है।)

[गौरीनाथने देखा, ज्योतिर्मयी मुन्नी गर्दन कुछ टेढ़ी किये हुए खड़ी है। एड़ीतक उसके बाल लटके हैं। उसके एक हाथमें कागज और दूसरे हाथमें पिस्तौल है।]

गौरी०—यह क्या है ?

मुन्नी—(कागज दिखाकर) दस्तखत करो।

गौरी०—यह है क्या !

मुन्नी—आपके पुत्रके नाम पत्र है—आदमीके हाथ तमस्सुक भेज देनेके लिए। पढ़ो। पढ़कर दस्तखत करो।

गौरी०—(कागज-कलम लेकर, और पढ़कर) ओ !—तो मुझे दस्तखत करने होंगे ?

मुन्नी—हाँ ! दस्तखत करो ।

गौरी०—नहीं, कभी नहीं ।

मुन्नी—दस्तखत करो ।—(पिस्तौल दिखाती है)

गौरी०—कभी नहीं ।—क्या करोगी !

मुन्नी—दस्तखत करो । (पिस्तौलकी नली गौरीनाथके सामने करके) अभी करो—नहीं तो—

गौरी०—अच्छा । (पत्रपर दस्तखत करता है)

मुन्नी—(चिट्ठी लिफाफेमें रखते रखते) बाबू, तुम बड़े लायक और फर्माबरदार हो !—लछिया ! लछिया !

[दासीका प्रवेश]

मुन्नी—यह लो ! (पत्र देना) और जो जो काम जिस तरह करनेको कह दिये हैं, वे सब उसी तरह करना !—जाओ, दरवाजा फिर बंद कर दो ।

(दासी बाहर जाकर दरवाजा बंद कर देती है और मुन्नी फिर रोशनी कर देती है ।)

मुन्नी—(हँसकर) देखते हो बाबू गौरीनाथ, चालबाजीमें तुम्हारी बराबरी करनेवाला और भी एक आदमी है !

गौरी०—ओफ ! तुममें इतनी बड़ी शैतानी भरी है मुन्नी ?

मुन्नी—वेश्यासे बढ़कर शैतान और इस दुनियामें कौन है ?—जिसके स्वरमें छल है, हँसनेमें छल है, चुम्बनमें छल है, गले लगनेमें छल है; जो अपने शरीरको बेचती है, आत्माको बेचती है, जीवनका सार रत्न जो प्यार है—उसे भी बेचती है; जो राजाओंके महलमें उल्लुओंका बसेरा करा सकती है, ऋषियोंकी तपस्याको मिट्टीमें मिला सकती है, एक बादशाहतको रसातलमें पहुँचा सकती है; जिसका

जीवन ही एक बड़ा भारी सजीव मिथ्यावाद है ।—इतना बड़ा शैतान और कौन है !—लेकिन मैं वेश्याकी बेटी नहीं हूँ । मैं विवाहित प्रेमका फूल हूँ । (स्वर काँपने लगता है) अगर यह पहलेसे जानती, तो किसी किसानकी स्त्री होकर पवित्र आनन्दमय दारिद्र्यके निर्मल सुखको भोग सकती ।—लेकिन तुमने मेरा सर्वनाश कर डाला ।

गौरी०—(विस्मयके साथ) मैंने !

मुन्नी—हाँ तुमने !—तुम जानते हो, मेरे पिता कौन हैं ?—नहीं जानते ! जानते किस तरह ! उस समय वे परदेशमें थे । लेकिन इस समय तुम उन्हें अच्छी तरह पहचानते हो । अच्छा सुनो, मेरे पिताका नाम भवानीप्रसाद है, जिनके घरको आपने मसान बना दिया है । मेरी माताका नाम हीरा है—जिसे कुलसे भ्रष्ट करके, जिनके पुराने विश्वासी बूढ़े नौकरको मारकर, अन्तको—एकटक क्या निहार रहे हो—उसकी भी हत्या की ।

गौरी०—कौन कहता है ?

मुन्नी—मैं कहती हूँ और मेरे पास प्रमाण हैं ।

गौरी०—तुम्हारे पास प्रमाण हैं । यह क्या कहती हो ! मुझे छोड़ दो मुन्नी ।

मुन्नी—ठहरो, अभी छोड़ती हूँ ।

गौरी०—मैंने हत्या करनेके इरादेसे हत्या नहीं की ।

मुन्नी—यह कैफियत अदालतमें हाकिमके सामने देना ।—वह लो—

[द्वार खोलकर पुलिसके साथ भवानीप्रसाद, शिवदयाल और कामताप्रसादका प्रवेश ।]

मुन्नी—यह लो ! दारोगा साहब, मैं इस गौरीनाथको अपनी माता हीराके हत्याके अपराधमें अभियुक्त करती हूँ । गवाह—ये लोग हैं-

दारोगा०—बाँध लो—

(सिपाही गौरीनाथको पकड़कर बाँधते हैं)

मुन्नी—और पिताजी, आपकी कन्या आपके सामने ही अपने पापका प्रायश्चित्त करती है। तो बस—(अपनी ठोढ़ीके तले पिस्तौल लगाकर)—पिताजी, बस आज्ञा दीजिए।

(ठीक इसी समय एकाएक घोर वज्र-नाद होता है। मुन्नी काँप उठती है, उसके हाथसे पिस्तौल गिर पड़ती है और वह बेहोश होकर गिर जाती है।)

भवानी०—मैया कालीने मेरी कन्याको बचा लिया है। (मुन्नीका सिर गोदमें लेकर) मेरी बदनसीब बेटी! मैंने मैयाके निकट प्रार्थना की है। उन्होंने तुझे अपने चरणोंमें स्थान दिया है।—उठ अभागिनी!

मुन्नी—[क्षीण स्वरसे] पिताजी!

भवानी०—बेटी!

चौथा दृश्य

स्थना—भोलानाथके सोनेका कमरा

समय—रात्रि

[भोलानाथ एक कटार हाथमें लिये प्रवेश करते हैं।]

भोला०—ना, मैं यहींपर अन्त कर दूँगा। अब नहीं सहा जाता। लेकिन—आत्महत्या!—मैया दुर्गा! मेरे सब शरीरमें सुइयाँ चुभा-चुभाकर मारोगी, और अगर वह मुझे असह्य हो—तो चट पाप हो गया। अगर यही बात है, तो मनुष्यको दानवकी शक्ति क्यों नहीं दी? इस क्षुद्र शरीरके बीच एक स्नेहका समुद्र क्यों भर दिया था रा[illegible] —किन्तु जीवनके अन्तिम अङ्कमें एक महापाप करके [illegible] (कटारको टेबिलके ऊपर रखता है और आप टेबिलके पास [illegible] ना—इसकी जरूरत नहीं है। (उठकर टहलने लगता है

नहीं सहा जाता। तिल तिल करके—यह भी तो मर ही रहा हूँ !—इससे बढ़कर—और क्या पातक हो सकता है !—भगवती ! मुझे तुमने यह जीवन दिया है—यह मेरी सम्पत्ति है। मैं इसे रक्खूँ या मिटा दूँ, इसमें तुम्हारा क्या! करूँगा—आत्महत्या करूँगा। (टेबिलके पास जाकर कटार उठाता है, उसे हथेलीमें गाड़ता है) ना, जरूरत नहीं है (फिर कटारको रखकर, टेबिलपर सिर रखकर सोचने लगता है। उसके बाद सहसा जैसे चौंक उठता है) यह क्या ! कौन मुझे उसी पुरातन परिचित स्वरमें पुकार रहा है ! क्या मृत्युके उस पारसे तुम मुझे पुकार रही हो बेटी !—वह फिर सुन पड़ा ! दूर है—नहीं पास ही है ! और भी ऊँचे, और भी मनको मस्त कर देनेवाले स्वरमें पुकार रही है। लो, यह आता हूँ बेटी। (कटार उठाता है)—कहाँ गई ! फिर सब सन्नाटा हो गया। (खिड़कीमें कान लगाकर) कहाँ !—रातका सन्नाटा छाया हुआ है ! कोई भी नहीं जागता। अकेला मैं जाग रहा हूँ। कोई भी नहीं देखता। देखता है केवल यह पूर्नोका चाँद;—स्थिर होकर देख रहा है। यह चन्द्रमाके पास कौन है ?—सरस्वती है क्या ?—वह मुझे हाथ बढ़ाकर बुला रही है।—नहीं। कहाँ ! कोई भी तो नहीं है;—सब कल्पना है ! (बैठ जाता है। फिर सहसा उठकर) वह फिर पुकारा !—फिर ! और भी निकट। ना, यह कल्पना—नहीं है। सरस्वती जरूर मुझे पुकार रही है !—वह देखो फिर! यह क्या है ! उसका स्वर क्या रातकी हवामें बहता हुआ इधर आ रहा है !—वह देखो फिर ! लो आता हूँ बेटी !—क्षमा करो दयामयी ! ...नी छातीमें कटार मार लेते हैं)

...क इसी समय " दादाजी, दादाजी। " कहकर पुकारती हुई द्वार ...स्वानीप्रसादके साथ सरस्वती प्रवेश करती है और भोलानाथके ... जाती है। भोलानाथके हाथसे कटार गिर जाता है। दीपक बुझ

मुन्नी
हीराके हत्
दारोगा०-

भग०—नहीं कुछ भ।न —यह । 'अगिया-बेताल' के तमा। रूपकी ज्योति दिखाकर मुझे घोर अन्धकारमें ला पटका; तूफ़ानमें बं गंगामें छोड़कर 'हाल' छोड़कर मुझे डुबा मारा, मुझे विश्वभरसे संसारभरकी दृष्टिमें घृणित, कुत्ता-सा बनाकर छोड़ दिया; मुझे मिथ्यावादी, धोखेबाज, जुआचोर, नीच पशुसे भी अधम कर और क्या करोगी !

मुन्नी—सब दोष हम लोगोंका ही है । हम पाप, मरी, स नाश सब कुछ हैं—यह स्वीकार करती हैं । हम तो हैं ही, और तक मनुष्य-जाति रहेगी, पृथ्वी रहेगी, सृष्टि रहेगी, तबतक हम और रहेंगी । व्याधिके कीटाणुओंकी तरह, स्रोतके की तरह, परके दलदलकी तरह, हम हैं, और रहेंगी । लेकिन तुम ग इस दूषित वायुमें क्यों घुसते हो ? इस आवर्त्तमें क्यों आकर पड़ते ? इस दलदलमें क्यों पैर बढ़ाते हो ?—क्या यह दोष भी हम लोगोंका ही है ।

भग०—ये बातें सुनानेके लिए ही क्या तुम यहाँ आई हो ?

मुन्नी—नहीं, मैं तुम्हें तुम्हारी सहधर्मिणीके पास ले जानेके लिए आई हूँ ।

भग०—उसे तो फाँसी हो गई है । मेरे लिए—

मुन्नी—फाँसी हुई है, लेकिन उसे नहीं—

भग०—फिर किसे ?

मुन्नी—गौरीनाथको । (दाँत पीसकर) उसी—नहीं, माको फिर
ी छाती- या है, फिर अब क्यों !—उस सतीको फाँसी नहीं हुई, उसकी
क इसी मृत्यु हुई है ।

मु वानीप्रसा —यह क्या ।
जाती है ।

राके ह गदाजीकी मृत्युके दूसरे ही दिन उस सतीकी मृत्यु हो गई

दारोगा